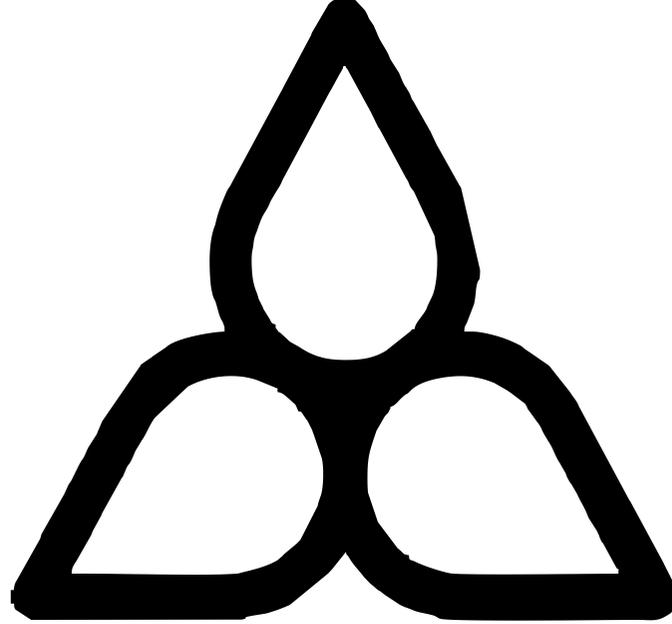


महावीर पुराण



ग्रन्थकर्त्ता

परम पूज्य पापनिकृन्तक, पुण्यप्रकाशक,
आचार्यश्री दामनन्दी जी महाराज

अनुवादक

परम पूज्य निजात्मध्यानसंलीन, चतुर्थ-पट्टाधीश,
आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

महावीर पुराण

ग्रन्थकार :- परम पूज्य कृपेक्षण, आचार्यश्री दामनन्दी जी महाराज
अनुवादक :- परम पूज्य कृपाद्रांग, पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज
आवृत्ति :- १ प्रति :- १००० प्रकाशन :- १९-३-२०२०

अवसर

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध परम्परा के चतुर्थ पट्टाधीश, परम पूज्य आर्षमार्गशिरोमणि, जिनशासनप्रदीप, विद्या-वाचस्पति, तपश्चर्या-चक्रवर्ती, परम्पराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज का पचासवाँ जन्मदिवस (१९-३-२०२०)

पुनः प्रकाशन हेतु अर्थसहयोग - रुपये २५/- मात्र

भरतकुमार इन्दरचन्द पापड़ीवाल

३-४-९, पानदरिबा रोड़, अप्पा हलवाई के पास
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ४३१००१

फोन = ०२४०-२३६८७८५

प्राप्तिस्थान -

मोबाइल = ०९३७११४११०४

sanmatir८@yahoo.com

suvidhiguru@gmail.com

suvidhiguru@yahoo.in

Website : www.jaingranths.com

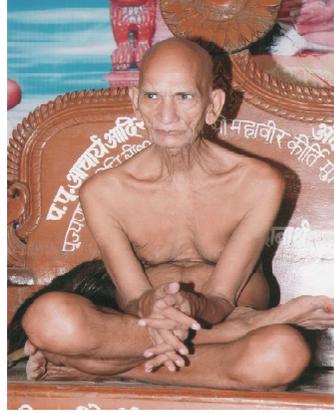
Website : www.vimalsagargranths.com

MAHAVEER PURAN

CHATURTHA-PATTADHISHACHARYASHREE
SUVIDHISAGAR JI MAHARAJ

समर्पण

परम पूज्य भव्यभावप्रमोदक, मोहाद्रिभंजकवज्र, सौम्य,
मोहभटजेता, महामानवपूजित, कल्याणमूल, युगधर्मा,
मुक्तिश्रीसङ्गतत्पर, मोक्षाधारैकनिकेत, महामतिविशारद,
मनःसंयमधारक, मुक्तिसीमन्तिनीवर, शरणागतसन्नाता,
सम्यक्त्व-शिरोमणि, चारित्रचक्रवर्ती, आचार्यभगवन्त,
श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) के पट्टाधीश,
परम पूज्य शारदासमुपासक, शान्तदान्तसमाश्रय, बुद्ध,
शास्त्रसिन्धुमहायान, शास्त्रश्रवणलोलुप, कारुण्यमूर्ति,
विश्वविद्याकुलग्रह, ज्ञानलक्ष्मीविद्यानिकेत, प्रतिभापर,
ज्ञानध्यानलीन, तीर्थभक्तशिरोमणि, अष्टादशभाषाभाषी,
कन्दर्पदर्पहारक, भवभुजगनिवारक, जिनधर्मप्रसारक,
आचार्यप्रवरश्री महावीरकीर्ति जी महाराज के पट्टाधीश,
परम पूज्य अधमोद्धारक, वात्सल्यरत्नाकर, वागधीश्वर,
पंचाचारपरायण, रत्नत्रयशिखामणि, गुरुभक्तशिरोमणि,
बालब्रह्मपदेश्वर, सिद्धान्त-चक्रवर्ती, महातपोमार्तण्ड,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज की परम पावन
कर-कमलों में सादर समर्पित-----



आशीर्वाद

यह भारतभूमि सदा ही साधु-सन्तों के अवतरण, निष्क्रमण, आचरण एवं साधना से पवित्र/पावन/पुनीत होती रही है। भूतकाल की भाँति वर्तमानकाल में भी अनेक भव्य जीव अपनी आत्मा का उद्धार कर रहे हैं। उन्हीं में से मुनिकुंजर, समाधि-सम्राट्, अप्रतिम उपसर्गविजेता, आदर्श तपरवी, महामुनि, दक्षिण भारत के वयोवृद्ध सन्त, आचार्य-परमेष्ठी श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर), उनके पट्टाधीश, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज, उनके शिष्य वात्सल्य-रत्नाकर, आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज-इन महापुरुषों की जीवनप्रणाली आगमोक्त रही है। इन्होंने स्वात्महित के साथ परहित भी किया है तथा अपनी तपोपूत आत्मा से भव्य आत्माओं को उपदेश दिया है। वह उपदेश ग्रन्थों के रूप में लिपिबद्ध है।

आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) ने भाद्रपद शुक्ला ४, वि. सं. १९२३ सन् १८६६ को महाराष्ट्र के अंकली ग्राम में जन्म लिया। मगसिर शुक्ला २, वि. सं. १९७० सन् १९१३ को सिद्धक्षेत्र कुन्धलगिरि पर मुनिदीक्षा ली। जेष्ठ शुक्ला ५, वि. सं. १९७२ सन् १९१५ को जयसिंगपुर (काडगीमला-उदगाँव) में आचार्यपद को ग्रहण किया। फाल्गुन कृष्णा १३, वि. सं. २००० सन् १९४४ को उदगाँव (कुंजवन) में समाधिमरण किया। उन्होंने अपने दीक्षाकाल में प्रायश्चित्त विधान (प्राकृत) को भाद्रपद शुक्ला ५, वि. सं. १९७२ सन् १९१५,

दिव्यदेशना (कन्नड़) को मगसिर शुक्ला ११, वि. सं. १९९९ सन् १९४१, जिनधर्मरहस्य (संस्कृत) को मगसिर शुक्ला २, वि. सं. १९९९ सन् १९४२, शिवपथ (संस्कृत) को भाद्रपद शुक्ला ४, वि. सं. २००० सन् १९४३, वचनामृत (मराठी) को माघ शुक्ला १४, वि. सं. २००० सन् १९४३, उद्बोधन (कन्नड़) फाल्गुन शुक्ला ११, वि. सं. २००० सन् १९४३, अन्तिम दिव्यदेशना (कन्नड़) को फाल्गुन कृष्णा १३, वि. सं. २००१ सन् १९४४ में पूर्ण किया।

आचार्यश्री के पट्टाधीश, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने वैशाख कृष्णा ९, वि. सं. १९६७ सन् १९१० को फिरोजाबाद में जन्म लिया। फाल्गुन शुक्ला ११, वि. सं. २००० सन् १९४३ को उदगाँव में मुनिदीक्षा ग्रहण की। आश्विन शुक्ला १०, वि. सं. २००० सन् १९४३ को आचार्यपद ग्रहण किया। माघ कृष्णा ६, वि. सं. २०२८ सन् १९७२ को मेहसाना में समाधि प्राप्त की। आचार्यश्री ने परम्परागत ज्ञान से अपने दीक्षाकाल में प्रायश्चित्त विधान (संस्कृत) को फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २००९ सन् १९५२, वचनामृत (अंग्रेजी) वर्ड्स ऑफ नेक्टर (Words of Nector) को मगसिर कृष्णा १०, वि. सं. २००० सन् १९४३, धर्मानन्द श्रावकाचार (हिन्दी) को चैत्र शुक्ला १३, वि. सं. २००० सन् १९४३, प्रबोधाष्टक (संस्कृत स्वोपज्ञ टीकासहित) को फाल्गुन कृष्णा ११, वि. सं. २००४ सन् १९४७, शिवपथ टीका को मगसिर कृष्णा १०, वि. सं. २००४ सन् १९४७ जिनधर्मरहस्य (हिन्दी टीका) को फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २०१० सन् १९५४, चतुर्विंशति स्तोत्र (संस्कृत) को मगसिर शुक्ला ११, वि. सं. २०१८ सन् १९६१ इनकी रचना की।

आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज ने आश्विन कृष्णा ७, वि. सं. १९७२ सन् १९१५ को कोसमा में जन्म लिया। फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २००९ सन् १९५२ को सोनागिरि में मुनिदीक्षा ग्रहण की। मगसिर कृष्णा २, वि. सं. २०१८ सन् १९६० को टुण्डला में आचार्यपद प्राप्त किया। पौष कृष्णा १२, वि. सं. २०५१ सन् १९९४ को सम्मेदशिखर में समाधिमरण किया। आपने दीक्षाकाल में प्राप्त हुये परम्परागत ज्ञान को लिपिबद्ध किया। जिनवाणी का वैभव (हिन्दी) को कार्तिक शुक्ला

१५, वि. सं. २००८ सन् १९५१, हे आचार्य आदिसागर अंकलीकर (हिन्दी) कार्तिक कृष्णा १०, वि. सं. २०३९ सन् १९८२, सन्देश (हिन्दी) आश्विन शुक्ला ९, (२३ अक्तूबर) को वि. सं. २०५० सन् १९९३ को प्रतिपादन कर पूर्ण किया।

सन्देश -

हमारी आचार्य परम्परा में प्रथम मुनिकुंजर आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) हैं। आप आचार्य महावीरकीर्ति जी के दीक्षागुरु हैं। आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) ने अपना आचार्यपद महावीरकीर्ति जी को दिया है।

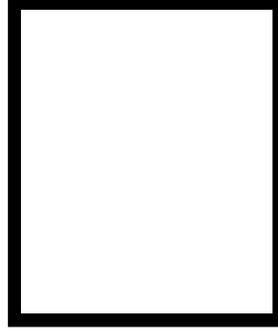
जैन समाज में आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) की परम्परा और आचार्य शान्तिसागर जी (दक्षिण) की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है। समाज का कर्तव्य है कि किसी प्रकार का विवाद न करके दोनों आचार्य परम्परा को आगमसम्मत मान कर वात्सल्य से धर्मप्रभावना करें।

परम पूज्य आचार्यश्री दामनन्दी जी महाराज द्वारा लिखित यह महावीर पुराण वर्तमानकालीन चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के जीवनवृत्त को प्रकट करने वाला है। इस पुण्यमयी चरित्र का पठन-पाठन करने वाले जीवों का पुण्यकर्म विकसित होगा एवं पापकर्म विनाश को प्राप्त होगा। यह चरित्र जीवन-विकास के अनेक सूत्रों को प्रदान करने वाला होने से अतिशय उपादेय है।

इस कृति के अनुवादक, आचार्य सुविधिसागर जी हैं। आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) से आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने ज्ञान को प्राप्त किया। आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज से आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज ने ज्ञान प्राप्त किया। आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज तथा आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसे सुविधिसागर जी ने प्राप्त किया है। इस प्रकार हमारे शिष्य ने परम्परागत ज्ञान प्राप्त करके प्रस्तुत ग्रन्थ का अनुवाद किया है।

अतः इस ग्रन्थ का प्रकाशन करने के लिये मेरा शुभाशीर्वाद है।

आचार्य सन्मतिसागर



आशीर्वाद

आचार्य-परमेष्ठी, महातपरस्वी, सन्मतिसागर जी महाराज के परम शिष्य, पट्टाधीश, आचार्य सुविधिसागर जी महाराज को मेरा प्रतिनमोऽस्तु।
आपके प्रति मेरी मंगल भावना।

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध परम्परा के चतुर्थ-पट्टाधीश, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज बने। इसी सन् २०१३ में उनका वर्षायोग हमारे साथ कुन्थुगिरि में हुआ। सुविधिसागर जी महाराज अनुशासनप्रिय, विनयी, स्वाध्यायशील, तपोनिष्ठ और आर्षपरम्परा के उपासक श्रमणरत्न हैं। उनकी दिनचर्या का बहुभाग ग्रन्थों का अनुवाद और सम्पादन में ही जाता है। उनके द्वारा लिखित, रचित और अनुवादित पचहत्तर ग्रन्थों का विमोचन हमारे सामने क्षेत्र पर दिनांक ११-५-२०१३ को हुआ था।

तपरस्वी-सम्राट्, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के उत्तराधिकारी पद को प्राप्त, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज के पचासवें जन्मजयन्ती दिवस के अवसर पर दिनांक १९-३-२०२० को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशभाषीय देह सौ ग्रन्थ अनुवादित कर प्रकाशित करने की योजना हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई। उनकी यह श्रुतसाधना मन को प्रसन्न करती है। ऐसे सांस्कृतिक कार्य मानवीय संस्कृति के लाभदायक हैं।

उनका यह लक्ष्य पूर्ण हों, वे निरन्तर आत्मकल्याण के मार्ग में प्रगति करें, उनका रत्नत्रय और स्वास्थ्य भी ठीक रहें, उनके द्वारा आर्षपरम्परा की सेवा होती रहें-ऐसी मेरी भावना है व आशीर्वाद भी है। आपको मेरा प्रतिनमोऽस्तु।

गणधराचार्य कुन्थुसागर

मनोगत

विश्व इतिहास में भगवान महावीर का जीवन-चरित्र अद्भुत और अत्यन्त पावन है। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व महतो महीयान् है। जिस प्रकार उदित हुआ सूर्य अपने प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है, उसी प्रकार भगवान महावीर ने इस धरातल पर जन्म लेकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित किया।

भगवान महावीर के काल की युगीन, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन करने पर महावीर का महत्त्व समझ में आता है। चन्दनबाला का कथानक यह बताता है कि उस समय रित्रियों को एक वस्तु मान कर उनका क्रय-विक्रय किया जाता था। उस समय धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा अपने चरम-समय पर थी। वर्ण और जातियों के द्वारा मनुष्यों की पहचान होती थी। ऐसे विकट समय में भगवान महावीर ने अपने उपदेशों से मानवसृष्टि को सन्मार्ग का प्रदर्शन किया।

भगवान महावीर ने राजपुत्र होकर भी वनोपवन में बारह वर्षों तक घोर तपश्चरण किया। तीस वर्षों तक मोक्षमार्ग का उपदेश देकर उन्होंने अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया। उनके समवसरण में चारों वर्णों के मनुष्य आत्मसाधना किया करते थे। उनकी शरण में अबला सबला होकर मोक्षमार्ग की साधना कर रही थी।

भगवान महावीर के जीवन-चरित्र का वर्णन करने वाले अनेक ग्रन्थ दिगम्बर आम्नाय में उपलब्ध हैं। उनमें से यह भी एक है। इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्यश्री दामनन्दी जी महाराज हैं। लघुकाय होते हुये भी इस ग्रन्थ की मौलिकता असन्दिग्ध है।

इस ग्रन्थ को प्रकाशनयोग्य बनाने में तथा प्रकाशित करने में अनेक श्रुतप्रेमियों का सहयोग प्राप्त हुआ है। उन सभी को आशीर्वाद।

अंकलीकर-परम्परा का चतुर्थ-पट्टाधीश

आचार्य सुविधिसागर

आचार्यश्री दामनन्दीविरचित
महावीरपुराण

प्रथमः सर्गः

(छन्द = अनुष्टुप्)

जयति त्रिजगन्नाथो-वर्द्धमानजिनांशुमान्।
आमोद्यं भव्यपद्मानामकरोज्ज्ञानरश्मिभिः॥१॥
प्रजादुरितविच्छेदे,पुण्यं रत्नोत्तमाकरम्।
पवित्रं चरितं तस्य भक्त्या वक्ष्ये समासतः॥२॥
जम्बूनाम्ने सुधर्मेण,पृच्छते कथितं पुरा।

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागरानुवादित

महावीरपुराण

पहला सर्ग

जो तीन लोक नाथ हैं, जो अपनी ज्ञानरूपी किरणों से भव्य जीवरूपी कमलों को प्रसन्न करने वाले हैं-ऐसे वर्द्धमान नामक सूर्य जयवन्त होवें॥१॥

जो जीवों की दरिद्रता का विनाश करने के लिये पुण्यरूपी रत्नों के उत्तम खान के समान हैं-ऐसे वर्द्धमान स्वामी के पवित्र चरित्र को मैं उनकी भक्ति से संक्षिप्ततः कहता हूँ॥२॥

पुराणं श्रूयतां सूरिपारम्पर्यक्रमागतम्॥३॥
 द्वीपेऽस्मिन्भारते वास्ये,छत्राकारपुरेऽभवत्।
 यो नन्दिवर्द्धनो राजा,प्रसूतिर्गुणसम्पदाम्॥४॥
 वीरमत्यां सुतस्तस्माद्देव्यामजनि नन्दनः।
 नानाविद्यार्थसलिल-प्रक्षालितबृहन्मतिः॥५॥
 अर्हते सूनवे तस्मै दत्त्वा राज्यश्रियं सतीम्।
 संसारासारवित्रस्तो-जगाम स तपोवनम्॥६॥
 स्थितो वृत्ते सतां श्लाघ्येऽशासदानन्दितो भुवम्।
 स्वगुणैरतुलैर्वश्यानत्यातीञ्च महीक्षितः॥७॥

पहले सुधर्म नामक गणधर ने जम्बूस्वामी के द्वारा पूछे जाने पर इस पुराण को कहा गया था। अतः आचार्य-परम्परा से आये हुये इस पुराण का आप श्रवण करें॥३॥

इसी जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के छत्राकारपुर में नन्दिवर्द्धन नामक एक राजा हुआ, जो गुणरूपी सम्पदा को उत्पन्न करने के लिये खान के समान था॥४॥

उसे अपनी वीरमती नामक रानी से नन्दन नामक पुत्र हुआ, जिसने अनेक शास्त्रों के अर्थरूपी जल से अपनी विशाल बुद्धि को स्वच्छ कर लिया था॥५॥

एक समय वह राजा अपने योग्य पुत्र को राज्यलक्ष्मी प्रदान करके संसार की असारता से भयभीत होकर तपोवन में चला गया॥६॥

इधर, उसके पुत्र ने इस पृथ्वी पर सज्जन मनुष्यों के द्वारा प्रशंसनीय चरित्र में स्थित रहते हुये प्रसन्नतापूर्वक शासन किया। उसने अपने अतुलनीय गुणों से अपने वंश के पूर्वज राजाओं को भी जीत लिया था॥७॥

देवी प्रियङ्करा कान्तिमैन्दवीं बिभ्रती पराम्।
 आसीत्तस्य गुणैः कान्तैस्तश्चित्तमनपायिनी॥८॥
 सुखमास्वादयन्तौ तौ,रमयन्तौ परस्परौ।
 सानुरागवरो जेतां,रतिपञ्चशराविव॥९॥
 ततो ज्ञानरुचा भिन्दन्,जनानां मोहतामसम्।
 तत्रागमदृष्टिमुख्यः प्रोष्ठिलो ज्ञानपारगः॥१०॥
 प्रीत्या सान्तःपुरो-राजा तमभ्यर्च्य यथाविधि।
 धर्मं संश्रुत्य पप्रच्छ,भवसन्ततिमात्मनः॥११॥
 सता सर्वविदः पृष्टो-विनयेन महीक्षिता।

उसकी चन्द्रमा के समान उत्कृष्ट कान्ति को धारण करने वाली प्रियङ्करा नामक रानी थी। उस रानी ने अपने मनोहर गुणों से राजा के चित्त का हरण कर लिया था॥८॥

अत्यन्त अनुराग को धारण करने वाले उन दोनों ने अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करते हुये रति और कामदेव के समान रमण करते हुये परस्पर में एक-दूसरे को जीत लिया था॥९॥

अथानन्तर, किसी समय वहाँ अपनी ज्ञानरूपी किरणों के द्वारा जीवों के मोहरूपी अन्धकार का विनाश करते हुये ज्ञान के पारगामी, प्रोष्ठिल नामक मुनिराज का पदार्पण हुआ। वे सम्यग्दर्शन के धारक जीवों में प्रमुख थे॥१०॥

राजा ने अपने रानियों के साथ प्रीतिपूर्वक उनकी विधिवत् पूजा की। उन्होंने धर्मोपदेश का श्रवण किया। तदुपरान्त उन्होंने उनसे अपने पूर्वभवों को पूछा॥११॥

समासेन यथावृत्तं, जगाद तपसां निधिः॥१२॥
 वर्षेऽस्मिञ्जाह्नवीकूले, वराहमलये भवः।
 इत्यतोऽष्टमे भवे राजन्! केशरो लोलकेशरः॥१३॥
 अन्यदा गगने यान्तौ, शयितं तु गुहामुखे।
 तं तु जयामितगुणौ, नाम्ना ददृशतुर्मुनी॥१४॥
 ज्ञानिनौ करुणावन्ताववतीर्य नभस्तलात्।
 अधः सप्तपलाशस्य, तौ निषण्णौ शिलातले॥१५॥
 चारणौ पूतकरणौ, हरिचोदनकरणौ।
 प्रज्ञप्तिमध्यगीषातां, मन्द्रेण ध्वनिना सतीम्॥१६॥

तब उस सज्जन राजा के द्वारा विनयपूर्वक पूछे जाने पर उन सर्वज्ञ मुनि ने संक्षेप में समस्त वृत्तान्त को इस प्रकार कहा॥१२॥

हे राजन्! तुम इस भव से पूर्व आठवें भव में इसी भरतक्षेत्र में गंगा नदी के तट पर वराहमलय नामक पर्वत पर लहराती सटाओं वाले सिंह हुये थे॥१३॥

एक समय वह सिंह गुफा के द्वार पर सो रहा था। उसी समय, वहाँ आकाशमार्ग से जाते हुये जय और अमितगुण नामक दो मुनियों ने उसे देखा॥१४॥

ज्ञानी एवं करुणा से सम्पन्न वे दोनों मुनिराज आकाश से उतर कर एक सप्तपर्ण नामक वृक्ष के नीचे शिला पर बैठ गये॥१५॥

वे मुनिराज संसार को पवित्र करने वाले थे। उन दोनों चारण मुनियों ने सिंह को प्रेरणा देने के लिये गम्भीर ध्वनि से बोध देने वाली उत्तम गाथाओं का गान आरम्भ किया॥१६॥

त्यक्त्वाशुभमनोवृत्तिं, तद्धवनेः समुपागतः।
 मुनिरूपं पुरा दृष्टं, चिन्तयन् समुपाविशत्॥१७॥
 स्वजन्ममुनिरूपस्य, दर्शनं ते हरे शृणु।
 इत्युक्त्वोवाच वदतां, वरस्तमजितञ्जयः॥१८॥
 द्वीपेऽस्मिन्पुण्डरीकिण्यां, नगर्या धर्मवत्सलः।
 धर्मस्वामीति विख्यातः, सार्थवाहो बभूव यः॥१९॥
 सूत्रमार्गानुगब्रह्म-ज्योतिर्ज्वलितविग्रहः।
 मुनिः सागरसेनाख्यः प्रययौ तेन सार्थिना॥२०॥
 दर्शनाइस्युसंङ्घस्य, समन्तादाकुलीकृताः।
 पलायाश्चक्रिरे क्षिप्रं, जना रत्नपुरान्तरे॥२१॥

उनकी उस ध्वनि को सुन कर वह सिंह अशुभ मनोवृत्ति को छोड़ कर वहाँ आया। उन मुनियों को मैंने पहले कभी देखा है-ऐसा विचार करते हुये वह वहाँ बैठ गया॥१७॥

तब अजितंजय नामक उत्तम वक्ता मुनिराज ने कहा कि हे सिंह! अपने पूर्वजन्म में मुनिरूप के दर्शन का वृत्तान्त सुनो॥१८॥

इसी जम्बूद्वीप की पुण्डरीकिणी नगरी में धर्मवत्सल, धर्मस्वामी नामक एक सुप्रसिद्ध व्यापारी रहा करता था॥१९॥

एक समय शास्त्र के अनुसार चलने वाले, ब्रह्मज्योति के धारक, देदीप्यमान शरीर को धारण करने वाले सागरसेन नामक मुनिराज उसके साथ गमन करने लगे॥२०॥

मार्ग में मधु नामक वन में उन्हें चारों ओर से भीलों के समूह ने घेर लिया। उस कारण सभी लोग भयभीत होकर समीपवर्ती रत्नपुर नामक नगर में भाग गये॥२१॥

काल्या पुरुरवं नार्या, पुलिन्दं मधुके वने।
 दृष्ट्वापृच्छत तन्मार्ग, नष्टमार्गो निराकुलः॥२२॥
 परया दयया तस्मै, कृत्वा धर्मोपदेशनम्।
 तेन दर्शितसन्मार्गो-जगाम मुनिसत्तमः॥२३॥
 पापात्साधूपदेशेन, विरते मार्गदर्शनात्।
 आयुष्यान्ते स सौधर्मे, जज्ञे द्विजलधिस्थितिः॥२४॥
 तत्रामितबलैश्वर्य-कान्तिज्ञानयशोद्युतिः।
 अनुभूयोत्तमं सौख्यं, ततोऽच्यवत नाकतः॥२५॥
 भारतेऽस्मिन्पुरे रम्ये, साकेते पुण्यकर्मणः।
 वृषभस्यापत्यो योऽभूद्-भरतो नामतः प्रियः॥२६॥

पुरुरव नामक भील को उसकी पत्नी काली ने उन मुनिराज का वध करने से रोका। मार्ग से भ्रमित हुये उन मुनिराज ने उसे देख कर उससे निराकुल भाव से मार्ग पूछा॥२२॥

मुनिराज ने अत्यन्त दयाभाव से धर्म का उपदेश दिया। मुनियों में श्रेष्ठ उन मुनिराज ने उसे सन्मार्ग बताया और वे वहाँ से चले गये॥२३॥

मुनिराज के उपदेश से समीचीन मार्ग को जान कर वह भील पापकर्मों से विरक्त हो गया। आयु के अन्त में मरण कर वह सौधर्म स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला देव हुआ॥२४॥

वहाँ अपार बल, ऐश्वर्य, कान्ति, ज्ञान, यश एवं द्युति को प्राप्त करके उसने उत्तम सुख भोगे और फिर स्वर्ग से च्युत होकर वह--॥२५॥

इसी भरतवर्ष की साकेत नामक सुन्दर नगरी में पुण्यशाली ऋषभदेव के प्रिय पुत्र, चक्रवर्ती भरत -----॥२६॥

तस्मादनन्तमत्यां च, सुतोऽजनि गुणाकरः।
 मरीचिस्तरुणादित्यमरीचिनिकरद्युतिः॥२७॥
 पुरुदेवेन निष्क्रम्य, परीषहपराजितः।
 जन्मप्रसंविमोहेन, पारिव्राज्यं व्यदत्त सः॥२८॥
 चिरकालं तपः कृत्वा, कृतान्ताकृष्टजीवितः।
 बभूव ब्रह्मलोकेशो-दशसागरजीवितः॥२९॥
 पुरे साकेतके नाम्नः, कपिलस्य ततश्च्युतः।
 द्विजातेरभवत्काल्याः, पुत्रश्च जटिलाह्वयः॥३०॥
 पारिव्राज्यमनुप्राप्य, दीक्षां कृत्वा महत्तपः।
 सौधर्मे द्विसमुद्रायुरासीन्नाकभुवां पतिः॥३१॥

और उसकी रानी अनन्तमती से उत्तम गुणों का धारक मरीचि नामक पुत्र हुआ, जिसकी कान्ति ऊपर चढ़ते हुये सूर्य की किरणों के समान थी॥२७॥

उसने भगवान आदिनाथ के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। परन्तु परीषहों को न जीत सकने के कारण और इस दीर्घ संसार में आसक्ति होने के कारण वह परिव्राजक साधु हो गया॥२८॥

इसके बाद चिरकाल तक तप करके यमराज के द्वारा जीवन ले लेने पर वह ब्रह्मलोक का इन्द्र हुआ। वहाँ उसकी आयु दस सागर की थी॥२९॥

वहाँसे च्युत होकर वह इसी साकेत नगरी में कपिल नामक ब्राह्मण की काली नामक पत्नी से जटिल नामक पुत्र हुआ॥३०॥

उसने परिव्राजक साधु की दीक्षा लेकर बहुत तप किया। आयु के अन्त में मरण करके सौधर्म स्वर्ग में देवों का इन्द्र हुआ। वहाँ उसकी आयु दो सागर की थी॥३१॥

स्थूणागारे ततश्च्युत्वा भारद्वाजस्य धीमतः।
 द्विजस्य पुष्पदन्तायां, पुष्यमित्रः सुतोऽभवत्॥३२॥
 पारिव्राज्यधरो भूत्वा, तपः कृत्वा चिरन्ततः।
 सौधर्मे त्रिदशोऽभूच्च सागरोपमजीवितः॥३३॥
 पुरि श्वेताम्बिकाख्यायां, च्युतोऽमितसुखात्ततः।
 अग्निभूतेः स गौतम्यां, सूनुरग्निसहोऽजनि॥३४॥
 पारिव्राज्येन सञ्चित्य पुण्यं निष्ठितजीवितः।
 सनत्कुमारकल्पेऽभूत्सुरः सप्तार्णवस्थितिः॥३५॥
 ततोऽवतीर्णो नगरे, मन्दिरे सितमन्दिरे।

इसके बाद वहाँ से च्युत होकर स्थूणागार नामक नगर में बुद्धिमान ब्राह्मण भारद्वाज की पत्नी पुष्पदन्ता से पुष्यमित्र नामक पुत्र हुआ॥३२॥

वहाँ भी वह परिव्राजक साधु हो गया। बहुत समय तक तपश्चर्या करके वह सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वे वहाँ सागरोपम पर्यन्त जीवित रहा॥३३॥

अमित सुखों का उपभोग करके वह वहाँ से च्युत हुआ। श्वेतम्बिका नामक नगर में अग्निभूति ब्राह्मण की पत्नी गौतमी से अग्निसह नामक पुत्र हुआ॥३४॥

उसने परिव्राजक साधु का रूप धारण कर जीवन व्यतीत किया और अन्त में सनत्कुमार स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ॥३५॥

इसके बाद वहाँ से च्युत होकर श्वेत भवनों से सम्पन्न, मन्दिर नामक नगर में गौतम ब्राह्मण की पत्नी कौशिकी से अग्निमित्र नामक पुत्र हुआ॥३६॥

सुतो गौतमकौशिक्योरग्निमित्रो बभूव सः॥३६॥

चिरमूढ्वा धुरं धर्म्या, परिव्राजकवेषभृत्।

ससोदधिसमायुष्को-माहेन्द्रे विबुधोऽभवत्॥३७॥

शालङ्कायनसंज्ञस्य, द्विजातेर्मन्दिरे पुरे।

च्युतोऽतो मन्दिरायाश्च, भारद्वाजोऽभवत्सुतः॥३८॥

पारिव्राजकरूपेण, समुपात्ततपोधनः।

सप्तसागरतुल्यायुर्माहेन्द्रोऽभूत्सुरोत्तमः॥३९॥

ततः प्रत्यागतस्तीव्रमानमिथ्योपदेशः।

चिरं ससार संसारे, त्रसस्थावरयोनिषु॥४०॥

(छन्द = शिखरिणी)

स संसारारण्यं भवनियुतनानाविषरुजा,

जरावल्लिस्यूतं व्यसनभुजगं रुग्वनचरम्।

उस पर्याय में परिव्राजक साधु का वेष धारण कर कुधर्म के भार को बहुत समय तक ढोकर अन्त में वह माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ॥३७॥

पुनः वहाँ से च्युत होकर मन्दिर नामक नगर में शालकायन नामक ब्राह्मण की पत्नी मन्दिरा से भारद्वाज नामक पुत्र हुआ॥३८॥

फिर परिव्राजक का रूप धारण कर तपरूपी धन को प्राप्त हुआ। अन्त में माहेन्द्र नामक स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक उत्तम देव हुआ॥३९॥

वहाँ से च्युत होकर वह तीव्र मान और मिथ्या उपदेशों के कारण इस संसार में अनेक प्रकार की त्रस और स्थावर योनियों में बहुत समय तक परिभ्रमण करता रहा॥४०॥

बृहद्दुर्गत्यद्रिं कुनयकुपथं मृत्युमृगपं,
 प्रविश्यात्युन्मार्गं प्रभुरनुबभूवार्त्तिमतुलाम्॥४१॥
 असद्वृत्तीवैः प्रविगलितपुण्याऽमृतरसै-
 र्न शक्यं यत्प्राप्तुं जननबहुकोटीषु सुचिरात्।
 तदापन्मानुष्यं धननिचितपापोपशमनात् ,
 कथञ्चित् सद्रत्नं निपतितमिवान्तर्जलनिधेः॥४२॥
इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे प्रथमः सर्गः समाप्तः।

इस प्रकार भगवान महावीर के उस जीव ने वृद्धावस्थारूपी लताओं से भरे हुये, व्यसनरूपी सर्पों और रोगरूपी वनचर पशुओं से व्याप्त, महादुर्गतिरूपी पर्वत वाले, कुनयरूपी अयोग्य मार्ग तथा मृत्युरूपी सिंहीं से भरे हुये इस संसाररूपी वन में अति उन्मार्ग का ज्ञानी होकर प्रवेश किया और अनेक भवों में मिले हुये अनेक प्रकार के विषैले रोगों से अतुलनीय दुःखों का अनुभव किया॥४१॥

मिथ्याचरित्र के धारक जीव जिनका कि पुण्यरूपी अमृतरस एकदम क्षीण हो चुका है, बहुत समय तक अनेक प्रकार के जन्मों में भी जिस मनुष्ययोनि को नहीं प्राप्त नहीं कर सकते, उसे यह जीव पापराशि का उपशमन हो जाने के कारण ठीक उसी प्रकार प्राप्त कर लेता है, जैसे कोई समुद्र के मध्य से निकल कर बाहर पड़े हुये उत्तम रत्न को प्राप्त कर लेता है॥४२॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामक ग्रन्थ के वर्द्धमान पुराण में पहला सर्ग समाप्त हुआ।



आचार्यश्री दामनन्दीविरचित
महावीरपुराण

द्वितीयः सर्गः

अथेह भारते वर्षे, पुरे राजगृहे शुभे।
 शाण्डिल्यायनविप्रोऽभूद्यो रतो धर्मकर्मसु॥१॥
 पाराशर्या सुतस्तस्माज्जातः स्थावरनामभृत्।
 पारिव्रज्यात्तपुण्येन, महेन्द्रं कल्पाश्रयत्॥२॥
 सप्तार्णवसमं कालमुपभुज्य परं सुखम्।

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागरानुवादित
महावीरपुराण

दूसरा सर्ग

अथानन्तर, इस भारतवर्ष के उत्तम राजगृह नामक नगर में धर्म-
 कर्म में रत रहने वाला शाण्डिल्यायन नामक एक ब्राह्मण हुआ॥१॥

उसकी पत्नी पाराशरी से वह जीव स्थावर नामक पुत्र हुआ। परिव्राजक
 बन कर उसने पुण्य का उपार्जन किया। फलतः वह माहेन्द्र स्वर्ग में
 गया॥२॥

वहाँ उसने सात सागरपर्यन्त उत्तम सुखों का उपभोग किया। जब
 पुण्य अवसान को प्राप्त हुआ, तब वह वहाँ प्राप्त होने वाले सुखों में
 अतृप्त होता हुआ च्युत हुआ॥३॥

अवसानं गते पुण्ये, च्युतोऽतृप्तसुखस्ततः॥३॥

पुरे राजगृहे राज्ञी, विश्वभूतेर्यशस्विनः।

जयिन्यास्तनयो जज्ञे, विश्वनन्दी गुणालयः॥४॥

विशाखभूतये भ्रात्रे, राज्यलक्ष्मीं कनीयसे।

सुददौ यौवराज्यं च, सूनवे विश्वनन्दिने॥५॥

आचार्यश्रीधरोपान्ते, राजभिस्त्रिशतैः सह।

दीक्षां विरहितग्रन्थां, ददे श्रीमाननुत्तमाम्॥६॥

यौवराज्यश्रिया कान्तो-विश्वनन्दिरतिप्रियः।

सहस्राप्रवनं श्रीमान्ययौ सान्तःपुरोऽन्यदा॥७॥

सर्वर्तु सुखदे तस्मिन्सर्वर्तु कुसुमाकरे।

राजगृह नामक नगर में यशस्वी राजा विश्वभूति की रानी जयिनी से वह विश्वनन्दी नामक गुणवान पुत्र हुआ॥४॥

एक समय राजा विश्वभूति ने अपने छोटे भाई विशाखभूति को राज्यलक्ष्मी प्रदान की और अपने पुत्र विश्वनन्दी को युवराज पद दिया॥५॥

उन्होंने आचार्य श्रीधर के पास तीन सौ राजाओं के साथ समस्त परिग्रहों का परित्याग करके श्रेष्ठ जैनी दीक्षा ग्रहण कर ली॥६॥

किसी समय युवराजपद से विभूषित, कामदेव के समान वह विश्वनन्दी अपने रानियों के साथ क्रीड़ा करने के लिये सहस्राप्र नामक वन में गया॥७॥

सम्पूर्ण ऋतुओं में सुख देने वाले तथा समस्त ऋतुओं के फूलों से भरे हुये उस उद्यान में वह स्त्रियों के साथ उत्तम भोगों से युक्त होकर क्रीड़ा करने लगा॥८॥

आरराम परैर्भोगैः, समेतो दयिताजनैः॥८॥
 लक्ष्मणायां महादेव्यां, नृपतेस्तनयोऽभवत्।
 नाम्ना विशाखनन्दीति, यः कान्तः शरदिन्दुवत्॥९॥
 स साम्यो युवराजेन, गुणरूपविभूतिभिः।
 उद्यानसम्प्रवेशस्य, निषेधादगमद्रुषम्॥१०॥
 तदुच्चात्मन उद्यानमयाचत स मातरम्।
 सापि क्षितिभुजं तस्य, यद्ययाचे सकारणम्॥११॥
 अनुमत्य गिरं तस्या, मन्त्रयित्वा स मन्त्रिभिः।
 समाहूय जगादेत्थं, सादरं विश्वनन्दिनम्॥१२॥

इधर राजा विशाखभूति की महारानी लक्ष्मणा से शरत्कालीन चन्द्रमा के समान मनोहर विशाखनन्दी नामक एक पुत्र हुआ॥९॥

वह गुण, रूप और विभूति से युवराज विश्वनन्दी के समान था। एक समय विश्वनन्दी उद्यान में क्रीड़ा करने के लिये जा रहा था। उस समय उसे वहाँ जाने न दिया गया, इससे वह रुष्ट हो गया॥१०॥

उसने अपनी माता से निवेदन किया कि मुझे उद्यान में प्रवेश करने की अनुमति दें।

उसकी माता ने भी राजा से कारण बतला कर उसे उद्यान में जाने देने की माँग की॥११॥

उस समय राजा ने भी रानी की बात को स्वीकार करके अपने मन्त्रियों से परामर्श किया और विश्वनन्दी को प्रेमपूर्वक बुला कर इस प्रकार कहा॥१२॥

अस्माकं विषयप्रान्तं, द्विषांचक्रैरुपप्लुतम्।
 उद्योगं तद्विनाशाय, करिष्ये त्वरयाधुना॥१३॥
 अप्रमादेन भवता, लोकचारित्रवेदिना।
 रक्ष्यो देशः सह पुरा, पुरा दृष्टसुखोदयः॥१४॥
 इत्येवं निगदन्तं तं, तदनुष्ठानमानसः।
 विज्ञाप्य सादरं कृच्छात्तदनुज्ञामलब्ध सः॥१५॥
 बलेन महता तेन, विश्वनन्दी समावृतः।
 आ देशान्तं ययौ शीघ्रं, निसर्गाप्रियसंयुगः॥१६॥
 तदन्तरे तदापास्य, योषितो विश्वनन्दिनः।

हे युवराज! हमारे देश के सीमान्त प्रदेश में शत्रुदल उपद्रव कर रहा है। इस समय उसे शीघ्र ही नष्ट करने के लिये मैं उन पर आक्रमण करूँगा॥१३॥

तुम लोक-व्यवहार के ज्ञाता हो। अतः तुम प्रमाद से रहित होकर नगरवासियों के साथ दीर्घ कालपर्यन्त सुख-समृद्धि से सम्पन्न अपने देश की रक्षा करो॥१४॥

इस प्रकार राजा के द्वारा सम्बोधित किये जाने पर स्वयं ही उस कार्य को करने की अभिलाषा से विश्वनन्दी ने विनयपूर्वक राजा से निवेदन किया और उनसे आज्ञा प्राप्त कर ली॥१५॥

जो स्वभाव से ही युद्ध का प्रेमी है-ऐसा वह विश्वनन्दी सेना के साथ शीघ्र ही देश के सीमान्त प्रदेश की ओर चला गया॥१६॥

विश्वनन्दी के चले जाने पर राजा ने विश्वनन्दी की पत्नियों को नन्दनवन के समान उस उपवन से हटा कर वहाँ अपने पुत्र को क्रीड़ा करने के लिये जाने दिया॥१७॥

राजा प्रावेशयत्पुत्रमाक्रीडं नन्दनोपमम्॥१७॥

ततः प्रत्यागतः पश्यन्परचक्रनिपीडिनम्।

विदित्वा तत्कृतं सर्वं, रुषा जज्वाल वर्तिवत्॥१८॥

उद्यानतिलकं स्तम्भं, श्रिया दीप्तं शिलामयम्।

बभञ्ज कूपरेणाशु कुपित्थं च व्यपातयत्॥१९॥

दर्शयित्वात्मनः शक्तिं, स निर्वेदमुपागतः।

सम्भूतोपान्तिके दीक्षामनवद्यामुपाददे॥२०॥

अन्यदा प्राप्तचारित्रः, पारणायै महामनाः।

मुनिर्मासोपवासान्ते, विवेश मथुरां पुरीम्॥२१॥

सुचिरं तपसोग्रेण, सुकृशीकृतविग्रहः।

परकीय सेना को पीड़ित करके विश्वनन्दी अपने नगरी में लौट आया। उसे राजा के द्वारा किया गया कपट ज्ञात हुआ। फलतः वह क्रोध के कारण दीपक की वर्तिका के समान जलने लगा॥१८॥

उसने अपने हाथों की कोहनी से पत्थर के बने हुये शोभनीय उद्यानतिलक नामक स्तम्भ को उखाड़ कर फेंक दिया और कैथे के वृक्ष को गिरा दिया॥१९॥

इस प्रकार अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर विश्वनन्दी संसार से विरक्त हो गया और सम्भूत नामक मुनिराज के समीप पापों से रहित दीक्षा ग्रहण कर ली॥२०॥

जो चारित्र के धारक हैं और जो महामना हैं-ऐसे वे मुनिराज किसी दिन एक माह का उपवास करने के बाद पारणा करने के लिये मथुरा नगरी में प्रविष्ट हुये॥२१॥

शान्तः वत्सप्रहारेण, रथ्यायां स्वलितोऽभवत्॥२२॥
 लक्ष्मणातनयस्तस्यां, वेश्याहर्म्ये समास्थितः।
 तमालोक्य जहासोच्चैरमानुषबलक्षयात्॥२३॥
 अकृत्वा पारणां रुष्टस्तदप्रियवचःश्रुतेः।
 सनिदानो विहायाङ्गं महाशुक्रेणसङ्गतः॥२४॥
 अवाप्ताष्टगुणैश्वर्यः, षोडशार्णवजीवितः।
 स्वसंस्कारविपाकेन, भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः॥२५॥
 वर्षेऽस्मिन् पौदने ख्याते, पुरे राज्ञः प्रजापतेः।
 मृगावत्यां प्रभावत्यां, त्रिपृष्ठोऽजायतात्मजः॥२६॥

उन्होंने चिरकालपर्यन्त उग्र तप किया। उससे उनका शरीर कृश हो गया। वे शान्त मुनिराज गाय के बछड़े का धक्का लगने से मार्ग में गिर पड़े॥२२॥

वहाँ लक्ष्मणा का वह पुत्र विशाखनन्दी एक वेश्या के भवन में खड़ा होकर उन्हें देख रहा था। मुनिराज का अमानुषिक बल नष्ट हो चुका है— ऐसा जान कर वह बहुत जोरों से हँसा॥२३॥

विशाखनन्दी के अप्रिय वचनों को सुन कर उन मुनिराज को महान क्रोध उत्पन्न हुआ। वे पारणा किये बिना ही लौट गये। अन्त में निदानपूर्वक शरीर को छोड़ कर वे महाशुक नामक स्वर्ग में देव हुये॥२४॥

वहाँ उन्हें आठ गुणरूप ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। वे वहाँ सोलह सागर पर्यन्त जीवित रहे। रसव-संस्कारों का विपाक होने से भोगों को भोग कर वह जीव वहाँ से च्युत हुआ॥२५॥

इस भरतवर्ष के पौदनपुर नामक प्रसिद्ध नगर में राजा प्रजापति की प्रभावशालिनी मृगावती रानी से वह त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ॥२६॥

सोऽभूद्भ्राज्ञोऽग्रजायाया, जयायां विजयः सुतः।
 विश्वभूतिश्च नामासीद्यः पुराभवजन्मनि॥२७॥
 तावभूतां जयासूनु-त्रिपृष्ठौ चारुवर्चसौ।
 प्रकृष्टप्रणयाबद्धौ, महासत्त्वबलश्रियौ॥२८॥
 भ्राता विशाखनन्दी यः, प्रसन्नात्मा पुराभवे।
 अश्वग्रीवत्रिपृष्ठस्य शत्रुरासीत्खगेश्वरः॥२९॥
 तं हत्वा प्रथमे भूत्वा, भारते रामकेशवौ।
 स्वसर्वरत्नविस्तारावभुञ्जातां श्रियं चिरम्॥३०॥
 अतृप्तः कामभोगानां, केशवोऽन्ते जगाम सः।
 नरकं सप्तमं तीव्रं, बहुक्लेशरसाकरम्॥३१॥

पूर्वजन्म में जो राजा विश्वभूति का जीव था, वह राजा प्रजापति की बड़ी रानी जयावती से विजय नामक पुत्र हुआ॥२७॥

जयावती के पुत्र विजय और त्रिपृष्ठ, ये दोनों महाप्रतापशाली थे। उन दोनों में अपूर्व स्नेह था। उनमें पराक्रम और शोभाविषयक अपूर्वता थी॥२८॥

पूर्वजन्म में विश्वनन्दी का भाई (विशाखनन्दी) था जो कि बड़ा मौजी था, वह अश्वग्रीव नामक विद्याधर हुआ। वह त्रिपृष्ठ का शत्रु था और विद्याधर था॥२९॥

उसे मार कर वे दोनों भाई इस भरतवर्ष में प्रथम नारायण और बलदेव हुये। उन्होंने अपने पद के योग्य समस्त प्रकार के रत्नों को प्राप्त करके बहुत समयपर्यन्त राज्यलक्ष्मी का भोग किया॥३०॥

काम और भोगों में अतृप्त रहता हुआ वह त्रिपृष्ठ नारायण अन्त में मरण करके अनेक प्रकार के क्लेशों के संयुक्त-ऐसे सातवें नरक में गया॥३१॥

उत्कृष्टजीवितो दुःखं, प्राप्य तस्माद्विनिर्गतः।
 अस्या रोधसि गङ्गाया-जातः सिंहगिरौ हरिः॥३२॥
 अर्जयित्वा महत्पापं जीवितान्तमुपेतवान्।
 एकार्णवोपमायुष्को-नरके प्रथमेऽजनि॥३३॥
 दुस्तरां वेदनां तस्मिन्ननुभूतगरीयसीम्।
 तस्मान्निर्गस्य संञ्जातः, सोऽयं त्वमिह केशरी॥३४॥
 संसृतिः सिंहसंसारे, सुखासुखविपाकिनी।
 त्वयैव सुचिरं कालमनुभूता स्वकर्मणा॥३५॥
 तदसत्यजमिथ्यात्वं, पापतो विरतो भव।
 धर्मे निधेहि चित्तं स्वं, यदीच्छेनिर्गम भवात्॥३६॥

वहाँ उसने उत्कृष्ट आयुप्रमाण (तीस सागरप्रमाण) काल में अनेक प्रकार के दुख भोगे और वह वहाँ से निकला। इस गंगा के तट पर सिंहगिरि नामक पर्वत पर सिंह हुआ॥३२॥

प्रचुर पापों का संग्रह करके उसका मरण हुआ। वह पहले नरक में एक सागर की आयु का धारक नारकी हुआ॥३३॥

वहाँ उसने अत्यन्त भयानक वेदनाओं का अनुभव किया। वहाँ से निकल कर वह यहाँ सिंह हुआ है। वह सिंह तुम ही हो॥३४॥

हे सिंह! इस संसार में सुख और दुःख के विपाकरूप परिवर्तन को तुमने अपने कर्मों के आधीन होकर बहुत काल तक भोगा है॥३५॥

अतः अब तुम मिथ्या बातों से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी पाप से विरक्त हो जाओ। यदि तुम इस संसार से पार होने की इच्छा करते हो तो तुम अपने चित्त को धर्म में लगाओ॥३६॥

आवाभ्यां श्रीधरस्यान्ते, श्रुतं केवलवेदिनः।
दशमे जनने सिंह, भवितासि जिनः किल॥३७॥
इत्युक्त्वा सम्मुदोत्कर्षकणिकाविलचक्षुषे।
सद्दृष्टिं हरये दत्त्वा, गतौ चक्रे मनो॥३८॥

(छन्द = मालिनी)

सुरयुवतिकुचान्तालीनगन्धादिवासं, .
कुवलयदलरागस्यामलं वायुमार्गम्।
स्वतनुविसृतपिङ्गज्योतिषाभ्युज्वलन्तौ,
शमितकलुषवृत्ती चारणावाश्रयेताम्॥३९॥

(छन्द = हरिणी)

रहितदुरितस्त्रस्तोभ्रान्तेर्भवार्णवसंङ्कटे
शुभपरिणतिः प्रत्याख्यानं प्रगृह्य यथाविधि।

हे सिंह! हम दोनों मुनियों ने श्रीधर नामक केवली के श्रीमुख से सुना है कि तुम इस भव से दसवें भव में तीर्थकर बनोगे॥३७॥

इस प्रकार कह कर तथा अत्यन्त आनन्द के कारण जिसके नेत्र सजल हो गये हैं-ऐसे उस सिंह को सम्यग्दर्शन ग्रहण करा कर उन जय और अमितमुनि ने जाने की इच्छा प्रकट की॥३८॥

अपने शरीर से निकलती हुयी पीली ज्योति से प्रकाशमान, कलुषित परिणामों से रहित, वे दोनों चारणमुनि, उस आकाश मार्ग से जाने लगे जो कि देवाङ्गनाओं के स्तनों पर लगे हुये सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित तथा नीलकमलों की कान्ति के समान निर्मल था॥३९॥

मरणवशगः सौधर्मस्थं प्रेयाय मनोरमं,
 शमुदधिजले मग्नो देवो बभूव हरिध्वजः॥४०॥
 इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे सम्यग्दर्शनावलम्बो
 नाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः।

वह सिंह भी पापों से रहित हो गया। वह भवसागर के दुःखों से भयभीत हुआ। वह शुभ भावनाओं वाला होकर विधिवत् प्रत्याख्यान करके मरण को प्राप्त हुआ। वह सौधर्म स्वर्ग में मनोरम शान्ति को प्राप्त करने वाला हरिध्वज (सिंहकेतु) नामक देव हुआ। वहाँ उसने एक सागर की आयु प्राप्त की॥४०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामक ग्रन्थ के वर्द्धमानचरित्र में दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

सन्मतिजिनपं सरसिजवदनं, सञ्जनिताखिलकर्मकमथनम्।
 पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं, पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥१॥
 वीरभवोदधिपारोत्तारं, मुक्तिश्रीवधुनगरविहारम्।
 द्विर्द्वादशकं तीर्थपवित्रं, जन्मामिषकृतनिर्मलगात्रम्।
 पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं, पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥२॥
 वर्द्धमाननामाख्य विशालं, मानप्रमाणलक्षणदशतालम्।
 शत्रुविमथनविकटभटवीरं, इष्टैश्वर्यधुरि कृतदूरम्।
 पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं, पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥३॥
 कुण्डलपुरि-सिद्धार्थभूपालं, तत्पत्नी प्रियकारिणिबालम्।
 तत्कुलनलिनविकाशितहंसं, घातपुरोघातिक विध्वंसम्।
 पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं, पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥४॥
 ज्ञान-दिवाकरलोकालोकं, निर्जितकर्मारतिविशोकम्।
 बालत्वे संयमसुपालितं, मोहमहानलमथन-विनीतम्।
 पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं, पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥५॥

आचार्यश्री दामनन्दीविरचित
महावीरपुराण

तृतीयः सर्गः

च्युत्वातो धातकीखण्डे, पूर्वमन्दरपूर्वगे।
 विदेहे नङ्गलावत्यां, विजयाद्धोत्तरे तटे॥१॥

कनकप्रभपुरेशस्य कनकाममहीपतेः।

देव्यां कनकमालायां, सुतोऽभूत्कनकोज्ज्वलः॥२॥

राजतां विपुलां प्राप्य, स स्ववसुविभूतये।

कनकप्रभया भोगान्, बुभुजेऽनिन्दितश्रिया॥३॥

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागरानुवादित

महावीरपुराण

तीसरा सर्ग

वह देव वहाँ से च्युत होकर धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वमन्दराचल के पूर्ववर्ती
 विदेह में मंगलावती देश के विजयाद्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी में---॥१॥

कनकप्रभपुर के राजा कनकाभ और उसकी रानी कनकमाला से वह
 कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ॥२॥

वहाँ उसने विशाल राज्य पाकर अपने धन और वैभव के अनुकूल
 अपनी उत्तम शोभा को धारण करने वाली रानी कनकप्रभा के साथ
 नाना प्रकार के भोगों का उपभोग किया॥३॥

कदाचिन्मन्दरोद्याने, प्रियमित्रमुनीश्वरात्।
 श्रुत्वा धर्म स जग्राह, सम्यग्दर्शनमुत्तमम्॥४॥
 सूनौ निधाय राज्यं स्वं, कनकादिरथाह्वये।
 दीक्षित्वा तन्मुनेरन्ते, चचार विपुलं तपः॥५॥
 कृत्वा सल्लेखनां मुख्यामन्ते लान्तवसंज्ञके।
 कल्पे त्रयोदशाध्यायुः, सुरानन्दः सुरोऽभवत्॥६॥
 देवोऽवतीर्य साकेतनगरे च महीपतेः।
 वज्रसेनासुषेणायां हरिषेणः सुतोऽभवत्॥७॥
 अन्यदा ससुतो धर्म, स श्रुत्वा श्रुतसागरात्।
 प्रदाय सूनवे राज्यं, प्रादीक्षत तदन्तिके॥८॥

किसी समय उसने मन्दर नामक उद्यान में प्रियमित्र नामक मुनीश्वर से धर्म का उपदेश सुना। उसे सुन कर उसने उत्तम सम्यग्दर्शन को धारण किया॥४॥

राजा ने कनकरथ नामक अपने पुत्र को राज्य दिया और वह उसी मुनिराज के श्रीचरणों में महान तप करने लगा॥५॥

जीवन के अन्त में उसने उत्तम सल्लेखना को धारण कर लान्तव नामक स्वर्ग में जन्म लिया। वहाँ उसकी आयु तेरह सागर की थी और वह देव अन्य देवों को आनन्द देने था॥६॥

वह देव अपनी देवपर्याय से च्युत होकर अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन और रानी सुषेणा से हरिषेण नामक पुत्र हुआ॥७॥

किसी दिन राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र के साथ श्रुतसागर मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना। उसने अपने पुत्र को राज्य दिया और उसने श्रुतसागर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण कर ली॥८॥

राज्यसन्त्यक्तवयोर्लब्धिमदाप्यायभवत् सुखम्।
श्रावकीयां परावृत्तिं चरन्ननतिचारिणीम्॥९॥

आयुरन्ते महाशुक्रे विमाने प्रीतिवर्द्धने।
अभूत्प्रीतिङ्करो नाम्ना, ख्यातो नाथो दिवौकसाम्॥१०॥

षोडशोदधिसाम्यायुरनुभूव सुखामृतम्।
पुण्यनिष्ठापरिक्षीणे विभूतिं च्युतवानतः॥११॥

धातकीखण्डपूर्वस्थमन्दराचलपूर्वगे।
विदेहे पुष्कलावत्यां विषये जनतासुखे॥१२॥

नगर्यां पुण्डरीकिण्यां, सुमित्राख्यमहीपतेः।
सुव्रतायामभूत्पुत्रः, प्रियमित्रो गुणाकरः॥१३॥

हरिषेण ने राज्य के साथ सम्यक्त्व को भी प्राप्त करके सुख का अनुभव किया। उसने अतिचाररहित होकर श्रावकों के व्रतों का पालन किया॥९॥

आयु समाप्त होने पर वह महाशुक्र स्वर्ग के प्रीतिवर्द्धन नामक विमान में प्रीतिकर नामक देवों का स्वामी हुआ॥१०॥

वहाँ उसने सोलह सागर तक सुखरूपी अमृत का पान किया और पुण्योदय के क्षीण होने पर वहाँ से च्युत हुआ॥११॥

धातकीखण्ड नामक द्वीप के पूर्वमन्दराचल के पूर्ववर्ती विदेह में जीवों को सुख देने वाले पुष्कलावती देश में ---॥१२॥

पुण्डरीकिणी नामक नगरी के सुमित्र नामक राजा और सुव्रता नामक रानी से अनेक गुणों को धारण करने वाला प्रियमित्र नामक पुत्र हुआ॥१३॥

क्षेमङ्करजिनस्यान्ते धर्मं श्रुत्वा महीपतिः।
 दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय, शिष्योऽभूत्तस्य धीमतः॥१४॥
 नृपश्रियं परां बिभ्रत्साम्राज्यं समवाप सः।
 निजपुण्यवशीभूत-नृपविद्याधरामरम्॥१५॥
 सुरविद्याधरानीतां, भोगश्रियमनुत्तमाम्।
 उपभुज्य चिरं भूमौ, द्वितीय इव वासवः॥१६॥
 राजराजोऽन्यदा भोगसमास्वादविरक्तधीः।
 सूनवेऽरिञ्जयायेमानन्दौ प्रीतो नृपश्रियम्॥१७॥
 ततः क्षेमङ्करस्यान्ते, दीक्षामक्षतपौरुषः।

क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप धर्म के उपदेश का श्रवण कर उस राजा ने अपने पुत्र को राज्य दिया और वह उन बुद्धिमान मुनिराज का शिष्य हो गया॥१४॥

प्रियमित्र ने उत्तम राज्यलक्ष्मी को धारण कर ऐसे साम्राज्य के पद को पाया, जिसमें उसके पुण्य से सभी राजा, विद्याधर और देव उसके वशीभूत थे॥१५॥

उसने देवताओं और विद्याधरों के द्वारा लायी गयी अत्यन्त उत्तम भोगरूपी लक्ष्मी का बहुत समय तक उपभोग किया। वह इस पृथ्वी पर दूसरे इन्द्र के समान था॥१६॥

एक दिन वह राजराज (चक्रवर्ती) विषय-भोगों से विरक्त हो गया और उसने अरिंजय नामक अपने पुत्र को सुखपूर्वक राज्य प्रदान कर दिया॥१७॥

तदुपरान्त अक्षत पुरुषार्थी होकर उस राजा ने क्षेमंकर नामक मुनिराज के पास एक हजार राजाओं के साथ पापों को नष्ट करने वाली दीक्षा ग्रहण कर ली॥१८॥

साकं राजसहस्रेण, प्रपेदे क्लेशभङ्गिनीम्॥१८॥

तपः कृत्वा चिरं कालमाराधितचतुष्टयः।

उदपादि सहस्रारे विमाने रुचकाह्वये॥१९॥

अष्टादशसमुद्रायुस्तत्र सूर्यप्रभः सुरः।

बुभुजे विषयप्रीतिजननीं भोगसम्पदम्॥२०॥

कृतान्तदृष्टिपातेन, निरस्तविभवोदयः।

ततश्च्युतो महीपाल, सोऽयं त्वमिह जातवान्॥२१॥

इत्येवं जन्मसन्तानो-भवतो गदितो मया।

तं विदित्वा लघु प्राप्य चोत्सह पदमक्षरम्॥२२॥

श्रुतवांस्तद्गिरं श्रव्यां, ज्ञात्वा वृत्तिं जनार्णवे।

उस राजा ने चिरकालपर्यन्त तपश्चर्या की। चार आराधनाओं की आराधना करके वह सहस्रार स्वर्ग के रुचक नामक विमान में देव हुआ॥१९॥

वहाँ उसका नाम सूर्यप्रभ था। वहाँ उसकी आयु अठारह सागर की थी। आयु के अवसानपर्यन्त उसने विषयों में प्रीति को उत्पन्न करने वाली भोग-सम्पत्ति का उपभोग किया॥२०॥

यमराज के दृष्टिपात से उसका पुण्योदय क्षीण हुआ। वह वहाँसे च्युत हुआ। हे राजन्! वह जीव तुम ही हो॥२१॥

इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूर्व जन्मों की परम्परा का वर्णन किया है। इस परम्परा को भली-भाँति जान कर तुम कर्मों के भार को हल्का करके अक्षयपद को प्राप्त करने के लिये उत्साहित होओ॥२२॥

राजा विरक्तराज्यश्रीस्तं मुनिं समपूजयत्॥२३॥

ततः प्रियङ्कराकान्तसूनवे गुणभागिने।

आनन्दाय ददौ राज्यं, समस्तगुणशोभितम्॥२४॥

सत्तीर्थं वासुपूज्यस्य, तस्यालंकुर्वतो गुणैः।

उपान्तिके महाराजो-व्यजहाद् ग्रन्थसंहतिम्॥२५॥

अभ्यस्यैकादशाङ्गानि, संयमेन महामतिः।

चक्रे तपांसि घोराणि, कर्मराशिं जिगीपया॥२६॥

आबध्य तीर्थकृन्नाम, कर्मषोडशकारणैः।

प्रायोपगमनेनान्ते, जहौ योगतनुं तनुम्॥२७॥

श्रवण करने के योग्य उनकी मनोहर वाणी का श्रवण करके और भवसागर में भ्रमण करने की वार्ता को जान कर वह राजा राज्यलक्ष्मीसे विरक्त हो गया। उसने मुनिराज की पूजा की॥२३॥

तदुपरान्त, प्रियंकरा रानी से उत्पन्न हुये अपने गुणवान पुत्र आनन्द को समस्त गुणों से सम्पन्न राज्य दे दिया॥२४॥

वह भगवान वासुपूज्य तीर्थकर का तीर्थकाल था। उसमें गुणों से सुशोभित उन प्रोष्ठिल मुनिराज के समीप उसने सभी प्रकार के परिग्रह का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली॥२५॥

संयम को धारण करके उस महामति ने ग्यारह अंगों का अभ्यास किया तथा कर्मराशि को जीतने की अभिलाषा से उसने घोर तपश्चर्या की॥२६॥

सोलह भावनाओं की भावना करके उसने नामकर्म की तीर्थकर प्रकृति का बन्ध किया। अन्त में प्रायोपगमन नामक संन्यासमरण को धारण कर तपश्चर्या से क्षीण हो चुके शरीर का त्याग कर दिया॥२७॥

विमाने चाच्युते कल्पे, स पुष्पोत्तरनामनि।
द्वाविंशत्यब्धिसाम्यायुर्जातस्त्रिदशसत्तमः॥२८॥

छन्द=मालिनी

दिनकरकररागहेषणात्मीयतेषु,
ज्वलितवलयमाला मौलिलीलोत्तमश्रीः।
सुकृतफलविपाकप्राप्तदेवाधिपत्यो-
रुचिरगुणकलापो ज्ञानशक्तिर्बभूव॥२९॥
सुखरसनिचिताङ्गै रम्यगन्धादिशोभैः,
स्मरशरसितधारापातलक्ष्यत्वजातैः॥
सकलगुणकलैः स्वैश्वारुदेवीसहस्रैः।

श्चिरमरमत भोगास्वादसंसिक्तचित्तः॥३०॥

**इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवद्भवाभिधानो
नाम तृतीयः सर्गः समाप्तः।**

वह अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर नामक विमान में बाईस सागर की आयु का धारक देवेन्द्र हुआ॥२८॥

वह इन्द्र सूर्य की किरणों को लज्जित करने वाले चमकीले हाथ के कंगन, गले की माला और सिर के मुकुट से अत्यन्त शोभित था। उसने अपने पुण्यकर्म के उदय से देवेन्द्र पद को प्राप्त किया था तथा वह मनोहर गुणसमूह तथा ज्ञानशक्ति से सम्पन्न था॥२९॥

वहाँ उस देव ने भोगों के आनन्द में अत्यन्त आसक्त होकर बहुत समय तक सुखरस से भरे हुये अंगों को धारण करने वाली रमणीय

सुगन्धित द्रव्यों से सुशोभित तथा कामदेव के बाणों की तीक्ष्णधारा के बराबर गिरने से चिह्न के समान एवं अनेक गुणों और कलाओं से सम्पन्न, सहस्रों देवांगनाओं के साथ भोग भोगे॥३०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामक ग्रन्थ के वर्धमानचरित्र में तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

(छन्द = मालिनी)

जननजलधीसेतुर्दुःखविध्वंसहेतुर्निहतमकरकेतुर्मारितानक्रकेतुः।
यमजननसमस्तोऽनिष्टनिःशेषधातुर्जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥१॥
शमदमयमकर्ता सारसंसारहर्ता,सकलभुवनभर्ता भूरिकल्याणकर्ता।
परम सुखभर्ता सर्वसन्देहहर्ता, जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥२॥
कुगतिपथविनेता मोक्षमार्गस्य नेता, सकलप्रकृतिहन्ता शुद्धतत्त्वस्य ज्ञाता।
अधोगतिपरिहन्ता मोक्षमार्गे रमन्ता, जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥३॥
सजलजलदनादो निर्जिताशेषवादो-नरपतिनुतपादो वस्तुतत्त्वजगादः।
सुरपमहितपादः क्रोधदावाग्निकन्दो-जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥४॥
प्रबलबलविशालो मुक्तिकान्तारसालो-विमलगुणसरालो नित्यकल्लोलमालः।
अतुलसुखनिवासो भूरिसन्तापकालो-जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥५॥
मदनमदविदारी चारुचारित्रधारी, नरकगतिनिवारी स्वर्गमोक्षावतारी।
नृसुरगमनकारी केवलज्ञानधारी,जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥६॥
विषयविषविनाशो भूरिभाषानिवासो-
हतभवभयपाशो दीप्तिसम्पूरिताशः।
शमसुखविनिवासो कीर्तिवल्लिनिवासो-
जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥७॥
वचनरचनधीरः पापधूलीसमीरः,
कनकनिकरगौरः क्रूरकर्मारिशूरः।
कलुषदहन नीरः पातितानङ्ग वीरो-
जगति जयति चन्द्रो वर्द्धमानो जिनेन्द्रः॥८॥
॥ इति वर्द्धमानस्तोत्रम्॥

आचार्यश्री दामनन्दीविरचित
महावीरपुराण

चतुर्थः सर्गः

अथास्मिन् भारते वर्षे विदेहेषु महर्द्धिषु।
 आसीत्कुण्डपुरं नाम्ना, पुरं सुरपुरोत्तमम्॥१॥
 सिद्धार्थस्तत्र राजासीत्प्रजाकान्ततराकृतिः।
 प्रसह्य भूक्षितां हर्त्ता, रत्नानां दैवसम्पदाम्॥२॥
 आसीत्तस्य महादेवी, दयिता प्रियकारिणी।
 रूपकान्तिविभूत्याद्यैर्जयन्ती देवयोषितः॥३॥

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागरानुवादित

महावीरपुराण

चौथा सर्ग

अथानन्तर, इसी भरतक्षेत्र में विदेह नामक एक समृद्धिशाली देश है।
 वहाँ देवों के नगर से भी अधिक श्रेष्ठ, कुण्डपुर नामक नगर है॥१॥
 उस नगर में सिद्धार्थ नामक राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा
 में सुन्दर आकृति का धारक था। वह दुःखी जनों के दुःखों का हर्त्ता था।
 वह दैवीय सम्पत्तियों का एवं रत्नों का स्वामी था॥२॥
 उसकी प्रियकारिणी नामक अतिशय प्रिय पटरानी थी। उसने अपनी
 रूप, कान्ति, वैभव आदि से देवांगनाओं को जीत लिया था॥३॥

सान्यदा सकलश्रीभिः, समालिङ्गितविग्रहा।
 शिरीषमृदुसंस्पर्शशयने शयिता सुखम्॥४॥
 वारणं गोपतिं सिंहमभिषेकयुतां श्रियम्।
 दामनी शशिनं सूर्यं, मत्स्ययुग्मं घटद्वयम्॥५॥
 नलिनीं विकचाम्भोजां, सागरं हरिविष्टरम्।
 विमानं भवनं दीप्तरत्नराशिं हुताशनम्॥६॥
 स्वप्नानेतान्क्षपान्ते तां, दर्शयित्वा पृथक्-पृथक्।
 षण्मासप्राप्तदेवेन्द्रपूजः पुष्पोत्तराधिपः॥७॥
 अवतीर्य ततो लोकान्कम्पयन् पुण्यशक्तितः।

एक समय वह श्री, ह्री आदि देवियों से भली-भाँति सेवा को प्राप्त होती हुयी शिरीषपुष्प के समान कोमल शय्या पर सुख से शयन कर रही थी॥४॥

१. गज, २. वृषभ, ३. सिंह, ४. अभिषेक प्राप्त होती हुयी लक्ष्मी, ५. दो मालार्ये, ६. चन्द्र, ७. सूर्य, ८. मीनयुगल, ९. दो कलश -----॥५॥

१०. खिले हुये कमलों से भरा हुआ सरोवर, ११. समुद्र, १२. सिंहासन, १३. विमान, १४. धरणेन्द्र का भवन, १५. जगमगाती हुयी रत्नराशि और १६. निर्धूम अग्नि-----॥६॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर में इन सोलह स्वप्नों को अलग-अलग दिखला कर, आयु के अन्तिम छह माह तक देवेन्द्रों से पूजित वह पुष्पोत्तर विमान का स्वामी-----॥७॥

स्वर्ग से अवतीर्ण हुआ और अपनी पुण्यशक्ति से तीनों लोकों को कम्पित करता हुआ श्वेत हाथी का रूप धारण कर उस माता के मुखमें प्रविष्ट हुआ॥८॥

सितवारणरूपेण, दिव्यः प्राविशदाननम्॥८॥

सा प्रबुद्धा स्वयं देवी, समलंकृतविग्रहा।

राज्ञे न्यवेदयत्सर्वमपूर्वा बिभ्रती रुचम्॥९॥

स जगाद फलं तेषां, संञ्जाताङ्गरुहोत्तमः।

गुरोस्त्रिभुवनस्यावां, यास्यावो गुरुतामिति॥१०॥

वसूनां सार्धकोटीकास्तिस्रः कोटीर्दिने-दिने।

मासान् पञ्चदशा जन्म, धनदोऽपातयद्गृहे॥११॥

जातेरुपस्थिते काले, दिशि प्राच्यामिवांशुमान्।

अजायत जिनस्तस्यां, कम्पयञ्जगतां त्रयम्॥१२॥

तदाशेषाः प्रजास्तुष्टाः, प्रसेदुः सकला दिशः।

स्वप्नों को देख कर वह रानी स्वयं जागृत हुयी। उसने अपने शरीर को अलंकारों से विभूषित किया। मनोहर रूप को धारण कर वह राजा के पास गयी और उन सोलह स्वप्नों को निवेदन करने लगी॥९॥

उस समय, हर्ष से पुलकित होकर उस राजा ने स्वप्नों के फल को कहा कि हम लोग तीन लोक के गुरु के गुरु अर्थात् माता-पिता होने वाले हैं॥१०॥

कुबेर ने पन्द्रह माहपर्यन्त तक प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा उनके घर पर की॥११॥

जन्म का काल आने पर वे भगवान तीनों लोकों को कम्पित करते हुये उस माता के उदर से उसी प्रकार उत्पन्न हुये जैसे पूर्व दिशा से सूर्य उदित होता है॥१२॥

सुरदुन्दुभयो नेदुः, पुष्पवर्षो दिवोऽपतत्॥१३॥
 इन्द्राः सपदि तज्जन्म, ज्ञात्वा विष्टरकम्पनैः।
 आपयुस्तत्पुरं भूत्या, सदेवाः साप्सरोगणाः॥१४॥
 जिनाम्बां प्रतिबिम्बेन, प्रमोह्य कृतसंस्कृतिम्।
 शची जिनमुपादाय, वज्रिणो निदधे करे॥१५॥
 स रराज तदातीव, सदुकूले करे हरेः।
 सन्ध्यातने सिताम्भोधेः, विवस्वानिव शारदः॥१६॥
 धार्यमाणसितच्छत्रं, लोलचामरवीजितम्।
 मन्दराग्रं निनायेन्द्रो-रत्नांशुद्युतिपाटलम्॥१७॥

उस समय सभी प्रजा सन्तोष को प्राप्त हुयी। समस्त दिशायें स्वच्छ हो गयी। देवतागण दुन्दुभि बाजे बजाने लगे और आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी॥१३॥

अपने-अपने आसन के कम्पित हो जाने से इन्द्रों ने शीघ्र ही भगवान के जन्म को जान लिया। अत्यन्त विभूतिपूर्वकदेवों और देवांगनाओं के साथ वे सभी उस नगर में आये॥१४॥

इन्द्राणी माता का संस्कार करके तथा उसे मोहनिद्रा में सुला कर माता के पास से मायामयी बालक को रख कर भगवान को उठा ले गयी और उसे इन्द्र के हाथ में रख दिया॥१५॥

वरत्रों से विभूषित इन्द्र के हाथ में वे भगवान उसी प्रकार अत्यन्त शोभित हुये, जैसे सन्ध्या के समय स्वच्छ समुद्र पर शरत्कालीन सूर्य सुशोभित होता है॥१६॥

इसके बाद इन्द्र भगवान पर श्वेत छत्र लगा कर चँवरों को हिलाता हुआ उन्हें रत्नों की किरणों से गुलाबी रंग वाले सुमेरुपर्वत पर ले गया॥१७॥

उपवेश्य स तं दीप्तो-विष्टरे पाण्डुकेऽमले।
 अस्त्रापयदपां पूर्णेर्हेमकुम्भैः पयोऽम्बुधेः॥१८॥
 तं शचीपतिसंस्कारकृतकौतुकमङ्गलम्।
 स्तुत्वा प्रणम्य देवेन्द्रा-मन्दरात्पुरमागताः॥१९॥
 इन्द्राणी जिनमादाय, स्वपतेः करपल्लवात्।
 विन्यस्य मातुरुत्सङ्गेव्यपनीय प्रतिरूपकम्॥२०॥
 गुरु जिनस्य देवेन्द्राः, पूजयित्वा यथाविधि।
 आक्रीड्य नृत्यमानन्दं, तदा स्वं ययुरालयम्॥२१॥
 भाज्यं त्रैलोक्यपूजायै, लब्ध्वा तनयमुत्तमम्।
 भगवत्पितरौ प्रीतिमतुलां समवापतुः॥२२॥

उन्हें निर्मल पाण्डुकशिला पर स्थित जगमगाते सिंहासन पर बिठा कर क्षीरसागर के जल से भरे हुये स्वर्ण के कलशों से भगवान का अभिषेक किया॥१८॥

इसके बाद इन्द्र ने भगवान को संस्कारित करके (वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके) और समस्त इन्द्रों ने भगवान को प्रणाम करके उनकी स्तुति की तथा सुमेरुपर्वत से पुनः नगर में ले आये॥१९॥

तत्पश्चात् इन्द्राणी ने अपने पति के करकमलों से भगवान को लेकर मायामयी बालक को हटा कर भगवान को माता की गोद में रख दिया॥२०॥

सभी इन्द्रों ने भगवान के माता-पिता की विधिपूर्वक पूजा की। आनन्द नामक नाटक खेल कर वे अपने-अपने स्थान चले गये॥२१॥

तीन लोक में पूजा के योग्य, श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त कर भगवान के माता-पिता अतिशय प्रीति को प्राप्त हुये॥२२॥

लक्ष्मीः काश्यपवंशस्य, परां वृद्धिं दिने-दिने।
 ययौ समन्ततो यस्माज्जाते त्रिभुवनेश्वरे ॥२३॥
 तस्मादिन्द्रैः पितृभ्यां च, दर्शनात्तप्तलोचनैः।
 वर्द्धमान इति श्रीमान्नाम चक्रे मुदा विभोः ॥२४॥
 प्रजानां परमप्रीतिं, कुर्वन् प्रतिदिनं विभुः।
 त्रिज्ञानी ववृधे कान्त्या, सौम्यया बालचन्द्रवत् ॥२५॥
 क्रीडन्तमन्यदोद्याने, कुमारैर्बहुभिर्जिनम्।
 रौद्रेण फणिरूपेण, कश्चिद्देवो विभीषितः ॥२६॥
 तदत्रासात्स्वयं त्रस्तो-नतः कृत्वातिपूजनम्।

त्रिभुवन के स्वामी का जन्म होने के कारण काश्यप वंश की लक्ष्मी दिनों-दिन चारों ओर से वृद्धि को प्राप्त हो रही थी ॥२३॥

भगवान का दर्शन करने से इन्द्रसमूह और भगवान के माता-पिता के नेत्र तृप्त हो गये थे। इन कारणों से भगवान का श्री वर्द्धमान यह नाम प्रसन्नतापूर्वक रखा गया ॥२४॥

तीन ज्ञान के धारक वे भगवान प्रजा को प्रतिदिन परम आनन्द प्रदान करते हुये बाल-चन्द्रमा के समान अपनी सौम्य कान्ति से वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥२५॥

एक समय भगवान बहुत-से राजकुमारों के साथ उद्यान में क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय उन्हें किसी देव ने भयंकर सर्प का रूप धारण भयभीत करने का प्रयत्न किया ॥२६॥

किन्तु, वह देव उन्हें भयभीत नहीं कर सका, अपितु स्वयं त्रस्त हो गया। उसने भगवान को नमस्कार कर उनकी पूजा की तथा उनका वीर यह प्रसिद्ध नाम रख दिया ॥२७॥

वीरो नाम्नायमित्याख्यामकरोदस्य विश्रु ताम्॥२७॥

फुल्लाम्भोजरजोगन्धिः, स्वप्रभापरिवेषिणी।

आसीत्तस्य तनुः कान्तिव्यक्तव्यञ्जनलक्षणा॥२८॥

न किञ्चिदद्भुतं तस्य, बभूव परमद्भुतम्।

नानाद्भुतं वृथैवासीत्पश्यतां चरितं निजम्॥२९॥

मुदिता वीक्ष्यमाणास्तुं प्रजास्तद्गुणरञ्जिताः।

आत्मोपार्जितसत्पुण्यविपाकमिव मेनिरे॥३०॥

धनदेन समानीतैर्विचित्रैर्वासवाज्ञया।

भोगैरमत प्राज्यैरतीवसुखकारणैः॥३१॥

भगवान् के शरीर की सुगन्धि खिले हुये कमल की गन्ध के समान थी। उनके शरीर की कान्ति प्रभामण्डल से व्याप्त तथा उनका शरीर अनेक शुभ और प्रकट चिह्नों से युक्त था॥२८॥

इस संसार में ऐसी कोई अद्भूत वस्तु नहीं थी, जो भगवान् के लिये अद्भूत हो। परन्तु, भगवान् के अद्भूत चरित्र को देखने वाले जीवों के लिये अन्य दूसरी अद्भूत वस्तुयें व्यर्थ हो रही थीं॥२९॥

उनके गुणों में मुग्ध जनता उन्हें देख कर बहुत प्रसन्न होती थी और सभी जीव उनके दर्शन को अपने पूर्वजन्म में उपार्जित किये गये उत्तम पुण्य का फल ही मानते थे॥३०॥

वे भगवान् इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा लाये गये अत्यन्त सुख देने वाले, विचित्र प्रकार के नानाविध भोगों से सुखपूर्वक रहने लगे॥३१॥

राज्यलक्ष्मीशितापाङ्गप्रणयाबद्धलोचनैः।
 कामितो नैव च क्षेमे, प्रथमज्ञानचोदितः॥३२॥
 तदा लौकान्तिका देवा-नियोगात्तमबोधयन्।
 उन्मूलनाय दोषाणां, क्षणोऽयमिति ते क्षमः॥३३॥
 समां प्रागभिनिःष्कान्तेर्जनतायै धनेश्वरः।
 ददौ किमिच्छकं दानं, जिनं वज्रधराज्ञया॥३४॥
 इन्द्राः स्वविष्टराकम्पैर्विदित्वावधिलोचनाः।
 आययुः परिवारैः स्वैः, सहसा कृतभूषणाः॥३५॥
 कुम्भैरष्टसहस्रेण, पयोऽर्णवजलोदरैः।

राज्यलक्ष्मी के तीक्ष्ण कटाक्षों और रनेह भरे नेत्रों से चाहे जाने पर भी वे भगवान मतिज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम हो जाने पर घर में ठहर नहीं सके॥३२॥

उस समय अपने नियोग को पूर्ण करने के लिये लौकान्तिक देव आये और भगवान को बोधित करने लगे कि हे भगवन्! आपके द्वारा दोषों को नष्ट करने के लिये यही क्षण उत्तम है॥३३॥

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने जिनेन्द्र भगवान की दीक्षा से पूर्व जनता के लिये किमिच्छक (जो चाहो, वह प्राप्त करो) दान दिया॥३४॥

अवधिज्ञान को धारण करने वाले इन्द्रों ने अपने-अपने आसनों के कम्पित हो जाने से भगवान का दीक्षाकल्याणक जान लिया और वे शीघ्र ही आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ आये॥३५॥

अभिषिञ्च्य जिनं वासो भूषणाद्यैरभूषयत्॥३६॥

रम्यां चन्द्रप्रभां नाम्ना चन्द्रांशुद्युतिहारिणीम्।
निर्वर्त्य शिविकां भक्त्या राजराजः समानयत्॥३७॥

इन्द्रविज्ञापितेनेशा, समारूढां मनोहराम्।
उत्क्षिप्तां क्षत्रियैः पूर्वं, तामूहुस्त्रिदशेश्वराः॥३८॥

सेवितो गीतनृत्याद्यैः सन्मोदैरप्सरोगणैः।
भुवस्तिलकमुद्यानं ज्ञातखण्डमवाप सः॥३९॥

अवतीर्य ततस्तत्र, निरस्तवसनाधिकः।

भगवान का क्षीरसागर के जल से भरे हुये एक हजार आठ कलशों से अभिषेक किया गया और उन्हें वस्त्र-आभूषण आदि से सज्जित किया गया॥३६॥

कुबेर ने चन्द्रमा की किरणों की चमक को लज्जित करने वाली चन्द्रप्रभा नामक रमणीय पालकी का निर्माण किया। वह उसे लेकर भक्तिपूर्वक वहाँ आया॥३७॥

इन्द्र के द्वारा निवेदन किये जाने पर वे भगवान उस मनोहर पालकी में विराजमान हुये। उस पालकी को पहले क्षत्रिय राजाओं ने उठाया। तत्पश्चात् देवताओं ने उस पालकी को उठाया॥३८॥

अतिशय प्रसन्न देवांगनाओं के द्वारा गीत, नृत्य आदि से सेवित वे भगवान पृथिवी के तिलक के समान सुन्दर ज्ञातखण्ड नामक उपवन में पहुँचे॥३९॥

वहाँ वे पालकी से उतर गये। उन्होंने अपने वस्त्र और आभूषण उतार दिये। उन्होंने एक शिला पर बैठ कर पाँच मुष्ठी से अपना केशलोच कर लिया॥४०॥

शिलायामासितः केशानलुञ्चत्पञ्चभिर्ग्रहैः॥४०॥

दीक्षां षष्ठेन भक्तेन, गतसङ्गां दिगम्बरः।

उपेतो राजतापास्तघनरोध इवांशुमान्॥४१॥

हैमे पटलके जैनान्केशानादाय वज्रभृत्।

अभ्यर्च्य निदधे क्षीरपयोधेरमले जले॥४२॥

दीक्षासमयसम्प्राप्तमनःपर्ययलोचनम्।

इन्द्राः सपरिवारास्तं प्रणिपत्य दिवं ययुः॥४३॥

(छन्द = शिखरिणी)

जरावत्तौद्भ्रान्तिं बहुविधरुजाग्राहकलितं,

भयक्लेशोद्वीचिं मरणबहुलालोलसलिलम्।

उन्होंने समस्त परिग्रहों का परित्याग कर षष्ठोपवासपूर्वक (द्वि उपवासपूर्वक) दीक्षा ग्रहण कर ली। वे स्वाभाविक दीप्ति से ऐसे ज्ञात होते थे, जैसे बादलों के हट जाने से सूर्य प्रभान्वित होता है॥४१॥

इन्द्र ने भगवान के केशों को सोने की पिटारी में रख कर और उनकी पूजा कर उन्हें क्षीरसागर के निर्मल जल में क्षेपित कर दिया॥४२॥

दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय नामक ज्ञान हुआ। इन्द्रों ने अपने समस्त देवों तथा देवियों के साथ भगवान की पूजा की और वे स्वर्गलोक में लौट गये॥४३॥

अनेक गुणरूपी किरणों से विभूषित उन जिनेन्द्ररूपी सूर्य ने ऐसे संसाररूपी समुद्र के समस्त जल को शीघ्र ही सूखा देने का प्रयत्न किया, जहाँ कि वृद्धावस्थारूपी भँवरों के चक्कर हैं, जो कि अनेक प्रकार

हृतं तृष्णावातैर्जननजलधेतोयमखिलं,
द्रुतं नेतुं येते गुणकिरणमालो जिनरविः॥४४॥
इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवदभिनिष्क्रमणं
नाम चतुर्थः सर्गः समाप्तः।

के रोगरूपी ग्राहों से व्याप्त है तथा भय और क्लेशरूपी लहरों से भरा हुआ है, जिसमें सदा मरणरूपी चंचल जल है और जो तृष्णारूपी वायुओं से संचालित है॥४४॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामक ग्रन्थ के वर्द्धमानचरित्र में चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

स्तोत्रकार

परम पूज्य भट्टारकप्रवरश्री सकलकीर्ति जी महाराज
त्वत्तो गुणाम्बुधेः सर्वं, वृद्धिं यास्यन्ति सद्गुणाः।
दृगाद्या धीमतां दोषाः, क्षयं रागादयोऽपि च॥१॥
न भवत्सदृशी देव! जगद्वन्धुर्जगद्गुरुः।
स्वान्ययोर्हितकर्ता च, परो जातु परात्मकः॥२॥
निस्वेदाय नमस्तुभ्यं, नमो निमलमूर्तये।
क्षीराभशोणिताङ्गाय, ते चाद्याकृतये नमः॥३॥
आदिसंहननायैव, दिव्यारूपाय ते नमः।
सौरभ्याय नमस्तुभ्यं, सौलक्षण्याय ते नमः॥४॥
अप्रमाणसुवोर्याय, नमस्ते हितवादिने।
मितवक्त्रे सहोत्पन्नदातिशयशालिने॥५॥
अन्यामितगुणायास्तु, नमस्ते ज्ञानचक्षुषे।
नमस्ते जगदानन्दकर्त्रे मुक्तिप्रियाय च॥६॥
त्वामिष्टुत्य देवेशं, प्रार्थयामो जगच्छ्रयम्।
न वयं किन्तु नो देहि, भवद्वैभवमञ्जसा॥७॥

आचार्यश्री दामनन्दीविरचित
महावीरपुराण

पञ्चमः सर्गः

कूलग्रामे ततो धीमानपरेद्युदर्यापरः।
 स्थितये संयमादीनां, भिक्षावृत्तिमनुष्ठितः॥१॥
 प्रतिलभ्य जिनं तत्र, सन्तुष्टः कूलभूपतिः।
 प्रणिपत्य समभ्यर्च्य, ददौ पायसमादृतः॥२॥
 वसुधारापतद् व्योन्नः, दिवि दुन्दुभयोऽनदन्।

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागरानुवादित
महावीरपुराण
 पाँचवाँ सर्ग

दूसरे दिन दयालु और बुद्धिमान भगवान संयम आदि की रक्षा के लिये भिक्षा लेने को कूल नामक ग्राम में गये॥१॥

वहाँ के कूल नामक राजा ने भगवान को अपने यहाँ आया हुआ जान कर उन्हें नमस्कार कर उनकी पूजा की और आदरपूर्वक उन्हें खीर का दान दिया॥२॥

उस समय आकाश से धन की वृष्टि हुयी। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगी। शीतल एवं दिव्य सुगन्धि को फैलाने वाली वायु बहने लगी। चन्दन की सुगन्धि से युक्त-----॥३॥

विचेलुः शीतला वाता-दिव्यगन्धविसर्पिणः॥३॥

वृष्टिः पपात पुष्पाणां चन्दनामृतगर्भिणाम्।

अहो दानगिरः प्रीतैश्चक्रिरे बहुशोऽमरैः॥४॥

तनुसन्धारणामात्रामदोषां शुद्धदातृकाम्।

आदाय युक्तितो भिक्षामष्टिकास्थानमाश्रितः॥५॥

ततः सुरगणाः प्रीता-वचनैः श्रवणामृतैः।

पात्रदानं प्रशंसन्तः, कुलं च समपूजयन्॥६॥

कर्मणां संहतिः क्षिप्रं, क्षयं याति यथा-यथा।

सत्तपोभावनायानः, स बभूव तथा-तथा॥७॥

विश्वजीवनिकायेषु, दयाविततमानसः।

अमृत से भरे हुये पुष्पों की वृष्टि होने लगी। देवताओं ने प्रसन्न होकर अहो दान-अहो दान, इस प्रकार बहुत बार शब्द किये॥४॥

भगवान ने शुद्ध दाता के द्वारा दी गयी निर्दोष भिक्षा को शरीर को धारण करने मात्र के लिये लिया। वे अष्टिका नामक स्थान में योगपूर्वक विराजित हो गये॥५॥

उस समय देवों ने प्रसन्न होकर कानों को प्रिय लगने वाले वचनों के द्वारा योग्य पात्र में दिये गये दान की प्रशंसा की और उस कूल राजा की पूजा की॥६॥

जितनी शीघ्रता से भगवान की यह कर्मराशि क्षीणत्व को प्राप्त होती जा रही थी, तदनु रूप ही उत्तम तप और आराधना करने में वे प्रयत्नशील हो रहे थे॥७॥

वर्षास्वेकत्र योगेन, चातुर्मास्यं जिनोऽवसत्॥८॥

ततोऽपरेषु मासेषु, ज्ञानध्यानतपोरतः।

व्यहरत्पुरराष्ट्राणि बभूवाप्रतिबन्धनः॥९॥

निशायामुज्जयिन्यां तु, कायोत्सर्गेण संस्थितः।

गौर्या समं व्रजन्योगी, दृष्ट्वानीश्वरः स तम्॥१०॥

संसार के समस्त प्राणियों पर दया से चित्त की व्याप्त कर वर्षाकाल के चार महीनों में वे एक ही स्थान पर योग की धारण करके रहा करते थे॥८॥

ज्ञातव्य :-

इस पद्य में भगवान के द्वारा वर्षायोग की साधना का संकेत किया गया है। भगवान जिनकल्प के धारक होते हैं। अतः उन्हें वर्षायोग की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ सामान्य मुनियों की चर्या को ध्यान में रख कर ऐसा वर्णन किया गया है-ऐसा लगता है॥८॥

उसके अतिरिक्त दूसरे महीनों में ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहने वाले वे भगवान बिना किसी अवरोध के नगरों और देशों में जीवों को धर्मोपदेश देते हुये भ्रमण करने लगे॥९॥

ज्ञातव्य :-

इस पद्य में भगवान के द्वारा धर्मोपदेश का वर्णन किया गया है। अब तक हमारे द्वारा जितना भी अध्ययन किया गया है, तदनुसार भगवान छद्मरथ अवस्था में नियमतः मौन ही रखते हैं। यहाँ सामान्य मुनियों की चर्या को ध्यान में रख कर ऐसा वर्णन किया गया है-ऐसा लगता है॥९॥

एक समय वे उज्जयिनी नगर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग धारण कर विराजमान थे। वहाँ गौरी के साथ घूमते हुये योगी ने उन्हें देखा॥१०॥

वेतालफणिसिंहादिरूपं विद्याबलेन तु।
 कृतवान्भीषणस्तत्र तस्य धैर्यं परीक्षितुम्॥११॥
 चलितुं तमशक्तः सन् पूजां कृत्वाभिधानताम्।
 दत्त्वापि च महावीरमित्यगात्स निजालयम्॥१२॥
 अन्यदा जृम्भिकग्रामे, ऋजुकूलनदीतटे।
 मनोहरवने सालवृक्षाधःस्थशिलातले॥१३॥
 षष्ठभक्तं समादाय शुक्लध्यानमुपेयिवान्।
 आरोहत्क्षपकश्रेणीं, जिगीषायै रजोद्विषाम्॥१४॥
 ध्यानार्चिष्यतिमोहादिघातिकर्मचतुष्टयम्।
 आहूय केवलज्ञानमपराह्णे स लब्धवान्॥१५॥

उस रुद्र ने भगवान के धैर्य की परीक्षा करने के लिये अपने विद्या के बल से वेताल, सर्प, सिंह आदि के रूप को धारण किया॥११॥

वह उन्हें चलित करने में असमर्थ रहा। उसने भगवान की पूजा कर उनका महावीर यह नाम रखा। ऐसा करके वह अपने स्थान पर चला गया॥१२॥

एक समय भगवान ऋजुकूला नदी के तट पर स्थित जृम्भिक नामक ग्राम के समीप मनोहर नामक वन में सालवृक्ष के नीचे शिला पर विराजमान थे॥१३॥

वहाँ उन्होंने षष्ठोपवासपूर्वक शुक्लध्यान को प्राप्त किया। कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये वे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुये॥१४॥

उन्होंने अपनी ध्यानरूपी अग्नि में मोहनीय आदि चार घातिया कर्मों की आहूति दी। उन्होंने अपराह्णकाल में केवलज्ञान को प्राप्त किया॥१५॥

ततो ज्ञात्वा तदुद्भूतिं, लोकत्रितयकम्पिनीम्।
 इन्द्राः देवगणोपेता, आययुः सविभूतयः॥१६॥
 नाथं प्रदक्षिणीकृत्य, स्तवैः स्तुत्वा स्तुतेः पदम्।
 प्रणिपत्य मुदा मूर्ध्ना, पूजयित्वा गता दिवम्॥१७॥
 दिव्यध्वनिसमुत्पत्तिं, ज्ञात्वोपायेन गोतमम्।
 आनीतवांस्तदा शक्रः स बभूव गणीश्वरः॥१८॥
 प्रतिपदिनपूर्वाह्णे, कृष्णे श्रावणमासि च।
 षट्सप्तवासरैर्जातो-दिव्यध्वनिविनिर्गमः॥१९॥

तब भगवान को तीनों लोकों में कम्पन उत्पन्न करने वाला केवलज्ञान हुआ है-ऐसा जान कर सभी इन्द्र, देवों के साथ, बड़े वैभव से वहाँ आये॥१६॥

भगवान को प्रदक्षिणा देकर स्तुति के योग्य उन भगवान की स्तुतिरूप पद्यों के द्वारा स्तुति की। फिर, प्रसन्नतापूर्वक सिर झुका कर उन्हें नमस्कार किया। देवगण पूजा करके स्वर्गलोक चले गये॥१७॥

भगवान की दिव्यध्वनि निकलने का क्या कारण होना चाहिये? ऐसा विचार कर इन्द्र गौतम को वहाँ किसी उपाय से ले आया। वे गौतम भगवान के पहले गणधर हुये॥१८॥

श्रावण महीने में कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन पूर्वाह्न में भगवान की दिव्यध्वनि निःसृत हुयी। वह दिव्यध्वनि अनवरत रूप से छह-सात दिनों तक बराबर चलती रही॥१९॥

ज्ञातव्य :-

भगवान की दिव्यध्वनि कुछ कम तीस वर्षपर्यन्त निःसृत हुयी है। प्रतिदिन चार बार दिव्यध्वनि निःसरण होती थी। एक समय में छह घड़ी

स वाचां मध्यमां प्राप्य, तीर्थोत्पादनकारणाम्।
 महासेनवनोद्यानं, समाध्यासितवान् विभुः॥२०॥
 ततः स्वतनुभूषादिद्युतिचक्रविसर्पणैः।
 द्योतयन्तो दिशोऽशेषा आयन्देवाः समन्ततः॥२१॥
 नेदुर्दुन्दुभयो न्योम्नि, सुभगा मारुता ववुः।
 पुष्पवृष्टिर्दिशो गन्धैर्वासयन्ती दिवोऽपतत्॥२२॥
 प्रकृत्य प्रातिहार्याणि, महं च परमाद्भुतम्।

प्रमाण अर्थात् दो घण्टे चौबीस मिनटप्रमाण तक यह दिव्यध्वनि निःसृत होती है॥१९॥

उन भगवान ने तीर्थ-प्रवर्तन करने में कारणस्वरूप मध्यमा नामक वाणी का अवलम्बन लिया। भगवान महासेन नामक उद्यान में विराजमान हो गये॥२०॥

ज्ञातव्य :-

यह प्रकरण अन्य महावीर पुराण में नहीं पाये जाते। इसका आधार क्या है? हमें ज्ञात नहीं है॥१९॥

तब अपने शरीर के आभूषण आदि से प्रकाशमण्डल को फैलाते हुये और समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हुये चारों ओर से देवगण वहाँ आये॥२१॥

उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगी, सुगन्धित वायु बहने लगी, दिशाओं को अपनी सुगन्धि से सुगन्धित करती हुयी पुष्पवृष्टि आकाश से गिरने लगी॥२२॥

सभी देवता आठ प्रातिहार्यों की रचना कर और अत्यन्त अद्भूत पूजा कर भगवान के धर्मोपदेशरूपी अमृत का पान करते हुये समवसरण में बैठ गये॥२३॥

अध्यासत पिबन्तस्ते जिनवाक्यसुधारसम्॥२३॥

तमशिष्यैर्जनैरन्यैर्दुरापं च जगत्त्रये।

अश्रौपुरीन्द्रभूत्याद्या, जीवादिगतसंशयाः॥२४॥

निर्वर्ण्य तूर्णमागत्य, प्रणिपत्य जिनेश्वरम्।

चन्दना राजकन्यानां, षष्ठा दीक्षामुपेयुषी॥२५॥

महासेनादयो जाताः, श्रावका धरणीभुजः।

जाताः प्रियङ्गुदेव्याद्याः, श्राविका गततामसाः॥२६॥

चतुर्विंकल्पसङ्घेशो-भूत्वा संज्ञानतेजसा।

चकार संशयच्छेदं, देवमानवसंसदि॥२७॥

जीवान् संसारजलधेस्तारणार्हान् स तारयन्।

प्रजाभ्यो देशयन्धर्मं, विजहार जिनो भुवम्॥२८॥

तीनों लोकों में अपात्र जीवों के लिये दुर्लभ उस वाणी को इन्द्रभूति आदि गणधरों ने जीवादि तत्त्व में सन्देह से रहित होकर सुना॥२४॥

चेटक राजा की छठी पुत्री चन्दना ने भगवान को प्रणाम कर तथा शीघ्र ही संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली॥२५॥

महासेन आदि राजा भी श्रावक हो गये और प्रियंगुदेवी आदि रानियाँ अज्ञान से रहित होकर श्राविकार्ये हो गयीं॥२६॥

वे भगवान चार प्रकार के संघों के स्वामी थे। उन्होंने अपने श्रेष्ठ ज्ञानबल से देवताओं और मनुष्यों की सभा में जनता का संशय नष्ट किया गया॥२७॥

संसार-सागर से तरने योग्य भव्य जीवों को तारते हुये तथा प्राणिवर्ग को उपदेश देते हुये वे जिनेन्द्र भगवान भूतल पर विहार करने लगे॥२८॥

श्रीमतो वर्द्धमानस्य, सर्वातिशयशोभिनः।
 गणेशाः संख्ययाभूवन्नेकादश महाधियः॥२९॥
 शतपञ्चभिरभ्यस्तं, मनःपर्ययवादिनाम्।
 आसीत्केवलानां संख्या, विहतं सप्तभिः शतम्॥३०॥
 त्रयोदशशता न्यासन्नवधिज्ञानसंयुताः।
 शतानि नव संख्यातां, वैक्रियावशवर्तिनाम्॥३१॥
 सहस्रा नव शैक्षास्ते, नवाहतशतोत्तरा।
 आसन् पूर्वधरास्त्रीणि, शतानि ब्रह्मतेजसः॥३२॥
 शतमासीच्चतुष्कं तु वादिनां युक्तिवादिनाम्।
 आर्थिकाणां सहस्रं तु, षट्त्रिंशद्विहतं पुनः॥३३॥
 त्रयं शतसहस्राणां, श्राविकाणां प्रमाणतः।

सम्पूर्ण अतिशयों से शोभित, श्रीमान, वर्द्धमान भगवान के महान बुद्धि को धारण करने वाले ग्यारह गणधर थे॥२९॥

पाँच सौ मनःपर्ययज्ञान के धारक थे। केवलज्ञानी मुनियों की संख्या सात सौ थी॥३०॥

अवधिज्ञानी मुनियों की संख्या तेरह सौ थी। विक्रिया ऋद्धि को धारण करने वाले मुनियों की संख्या नौ सौ थी॥३१॥

उपाध्यायों की संख्या नौ हजार नौ सौ थी। परम तेज को धारण करने वाले चौदह पूर्वधारी मुनि तीन सौ थे॥३२॥

युक्तिवादी मुनियों की संख्या चार सौ थी। चन्दना आदि छत्तीस हजार आर्थिकार्ये थी॥३३॥

श्राविकाओं का प्रमाण तीन लाख था। यशस्वी श्रावक एक लाख थे॥३४॥

एकं शतसहस्रं च, श्रावकाणां यशोभृताम्॥३४॥

अथान्ते दर्शनज्ञानचारित्रविधिनायकः।

आगत्य नगरीं पावां, सहसङ्घचतुष्टयः॥३५॥

शिलायां स्थितवानेकः, प्रलम्बितकरद्वयः।

भूत्वा योगी ततश्चक्रे, शेषाणां कर्मणां क्षयम्॥३६॥

ऊर्जस्य कालपक्षस्य, चतुर्दश्यां निशि प्रभुः।

कृतिं निष्ठाप्य षष्ठेन, प्रत्यूषे प्राप निर्वृतिम्॥३७॥

अथेन्द्रा देवसङ्घेन, साकं सपदि सादराः।

निशि तमांसि भिन्दन्तो-रुचां चक्रैः समाययुः॥३८॥

आत्मीयशक्तिसर्वस्वं, दर्शयन्त इवाद्भुताम्।

पूजां तस्य तनोश्चक्रुर्गन्धाम्बुप्रसवादिभिः॥३९॥

इस प्रकार चतुर्विध संघ के साथ विहार करके अन्त में वे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी निधि के नायक, भगवान पावा नामक नगरी में आये॥३५॥

वे वहाँ एकाकी ही एक शिला पर खड़गासन से खड़े हो गये। उन भगवान ने शेष कर्मों को भी नष्ट कर दिया॥३६॥

उन्होंने कार्तिक महीने की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त कर प्रातःकाल मोक्ष को प्राप्त किया॥३७॥

उस समय, समस्त इन्द्र अपने देवताओं के साथ आदरपूर्वक शीघ्र ही रात्रि के अन्धकार को अपने प्रभामण्डल से भेदते हुये वहाँ आये॥३८॥

वे आत्मीय शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे। उन्होंने जल, चन्दन, पुष्प आदि से भगवान के शरीरकी अनुपम पूजा की॥३९॥

ततो जिनकथासान्द्रसरञ्जितमानसाः।
 उत्पाद्य पुण्यसद्रत्नं, ययुर्नाकं यथायथम्॥४०॥
 स समा त्रिंशतं भोगे, वने च द्वादशावसत्।
 विजहार श्रिया जैन्या, त्रिंशतं त्रिदशार्चितः॥४१॥
 वैशाखशुक्लपक्षस्य, दशम्यामाप केवलम्।
 श्रावणकृष्णपक्षादिदिने तीर्थप्रवर्तनम्॥४२॥
 अर्यमन्नभवदृक्षं स्वर्गावतरणादिषु।
 स्वातिश्च परिनिर्वाणे, वर्द्धमानस्य धीमतः॥४३॥
 सप्तारत्निप्रमाणाङ्गं, शरत्तपनतेजसम्।
 वर्द्धमानं जिनं मूर्ध्ना, नमामि ज्वलितश्रियम्॥४४॥

जिनेन्द्र भगवान के गुणों के कीर्तन से जिनका चित्त अनुरंजित हो रहा था-ऐसे वे देव जिनगुण का गान करके तथा पुण्यलाभ प्राप्त करके प्रसन्नचित्त होकर स्वर्गलोक चले गये॥४०॥

उन भगवान ने अपनी आयु के तीस वर्षों तक भोगों को भोगा। उन्होंने बारह वर्ष तपश्चर्या में व्यतीत किये और तीस वर्ष तक इन्द्रों से पूज्य, अर्हन्तलक्ष्मी को प्राप्त कर उन्होंने विहार किया॥४१॥

उन्होंने वैशाख माह के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि के दिन केवलज्ञान को प्राप्त किया था। श्रावण माह के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन उन्होंने तीर्थप्रवर्तन किया था॥४२॥

वर्द्धमान भगवान के स्वर्ग से अवतरण आदि में अर्यमा नामक योग था। जब भगवान मोक्ष को प्राप्त हुये, तब स्वाति नामक नक्षत्र उदित था॥४३॥

उनके शरीर की अवगाहना सात अरत्निप्रमाण (सात हाथप्रमाण) थी। उनके शरीर की प्रभा शरत्कालीन सूर्य के समान थी। जो लक्ष्मी से सुशोभित हैं-ऐसे वर्द्धमान भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ॥४४॥

(छन्द = शिखरिणी)

इतीयं नामावलिरुचिरकुसुमैः कान्तिरहितै-
र्यशोगन्धामोदैः स्तुतिकिसलयोन्मिश्रसुभगैः।

जिनस्यार्च्या भक्तिप्रचलितधियाकारि हि मया,
क्षमा कार्या तस्यां गुणविरहितायामपि विदा॥४५॥

गतान्तो विद्यानां त्रिदशवनितानामधिपति
र्न शक्तो यस्यासीद्गुणलवमपि स्तोतुमखिलम्।

महिम्नामाधारो भुवनविततध्वान्ततपनः,

स भूयान्नो वीरो जननजयसम्पत्तिजननः॥४६॥

**इति महावीरपुराणसारसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनं नाम
पञ्चमः सर्गः समाप्तः।**

इस प्रकार भक्तिवश मैंने यशरूपी गन्ध से सुगन्धित और स्तुतिरूपी कोपलों से सुशोभित, कान्ति से रहित होने पर भी नामावलीरूपी मनोहर पुष्पों से जिन भगवानकी पूजा की है। गुणों से रहित होने पर भी इस स्तुति के सम्बन्ध में सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें॥४५॥

विद्या में पारंगत, देवानाओं का स्वामी इन्द्र भी जिनके कुछ गुणों की भी पूर्णरूप से स्तुति करने में असमर्थ रहा है, वे समस्त महिमाओं के आधार, संसार के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान वीर भगवान हम सभी के जन्म मृत्यु को जीतने वाली सम्पत्ति को प्रदान करने वाले हों॥४६॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामक ग्रन्थ के वर्धमानचरित्र में पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

इस प्रकार वर्धमान पुराण नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

महावीरस्तोत्रम्

येन स्वयं निजहिताप्तिकृते समुत्थ-
 भावप्रवाहपरिपूरितमानसेन।
 वैशालिराज्यमरिकण्टकशून्यमिद्धं,
 त्यक्तं सुजीर्णतृणतुल्यमवेत्य तस्य॥१॥
 सिद्धार्थभूपतिसुतस्य पवित्रतीर्थ-
 कर्तुः प्रचण्डबलवीर्यसमन्वितस्य।
 वीरस्य पादयुगलं भवसिन्धुगानां,
 पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य॥२॥ (युग्मम्)
 धीवर्जितस्तदनुरागभराङ्गचित्तः, पापप्रणाशनविधौ कृत भक्तिशक्ति।
 मत्वा स्तुतो गणधरैरपि यश्च भक्त्या, तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये॥३॥
 मिथ्यात्वमद्यमलिनीकृतबोधवृद्धो-
 नाथ! त्वदीयममलं चरितं न वेत्ति।
 नैतच्च विस्मयकरं यदुलूकपोतो-
 रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः॥४॥
 नाथ! त्वदीय गुणराशिरमेय एव,
 शक्तोऽस्ति सङ्गणयितुं न यतश्च कोऽपि।
 सत्यं हि स्वस्य परिसंस्थिततारकालि-
 मीयेत केन जलधर्ननु रत्नराशिः॥५॥
 सर्वज्ञ! नाथ! भगवंस्तव सद्गुणानां, व्यावर्णने गणधरैरपि नैव लब्धः।
 अन्तो य इच्छति विधातुमियं स मन्ये, विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः॥६॥
 कल्याणमन्दिरमवेत्य भवन्तमीशं,
 ते संस्तुतिं रचितुमद्य बभूव वाञ्छा।
 स्वान्तः सुखाय जिनदेव! विनोपरोधाद्-
 जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि॥७॥
 ननू यथा महित! नाथ! निदाघकाले,
 श्रान्ताश्च तान् सुपथगान् पथिकांस्तृषार्त्तान्।

स्वच्छाम्बुशीकरयुतः कमलानुगन्धी,
 प्रीणाति पद्मसरसः सरसानिलोऽपि॥८॥
 स्वामिंस्तथैव विरहेऽपि च वर्त्तमानान्, दुःखौघपीडितजनानपि धैर्यदाता।
 बोधप्रदस्तव मुखोद्गत आगमोऽसौ, प्रह्लात्यमन्दमनिशं सुतनोति मोदम्॥९॥
 चित्तागते भवति नाथ! कषायभावा-
 मन्दा भवन्ति भविनां भवतः प्रभावात्।
 चित्रं किमत्र शिथिलान्यहिबन्धनानि,
 मध्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य॥१०॥
 संलुब्धकैर्व्यसनपापमलैः समन्तान्मुच्यन्त एव मनुजो भगवंस्त्वयीते।
 चेतो गृहं झटिति पूषनि चोद्गते खे, चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः॥११॥
 हेतुस्त्वदीयगुणवर्णन मूढ एषः
 वाचालता धरति तत्र तव प्रभावः।
 ऊर्ध्वं समुच्छलति-यत्खलु कन्दुकोऽल्पो-
 ऽप्यन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः॥१२॥
 देवादयो विचलिता अपि यत्प्रभावात्,
 ते च त्वयैव विजिता विषयाः कषायाः।
 विध्यापिताग्निसलिलं खलु वार्धिगेन,
 पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवग्नेः॥१३॥
 सिद्धार्थनन्दन! विशिष्टमहोभिरेभिर्दृग्बोधवृत्तकिरणैः परिभासमानम्।
 व्याख्यानसंसदि समीक्ष्य विराजमानं, किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः॥१४॥
 नात्यद्भुतं भुवि जिनेन्द्र! सुरासुराद्यै-
 र्जति सति त्वयि कृतः प्रबलोत्सवोऽत्र।
 तीर्थङ्करप्रकृतिपुण्यजुषां जनानां,
 चिन्त्यो न हन्त! महतां यदि वा प्रभावः॥१५॥
 त्वं वीतराग! समदृष्टियुतस्तथापि,
 प्रध्वंसयन्त्यपरगाश्च गिरस्त्वदीयाः।
 नाश्चर्यमत्र ननु सन्दहति स्वभावा-
 न्नीलद्रुमाणि विपनानि न किं हिमानी॥१६॥
 योगीश्वरा विविधपूततपोऽभिजुष्टा-

हृद्वासिनं सततमेव भवन्तमिष्टम्।
 अन्वेषयन्ति हृदये न यतस्ततोऽन्य-
 च्चाक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः॥१७॥
 त्वद्दधानतः परमपावन! नाथ! जीवा-
 स्त्वत्सन्निभा यदि भवन्ति न चात्र चित्रम्।
 दृष्टा रसायनवशाद्धि समाप्नुवन्त-
 श्माचीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः॥१८॥
 युद्धस्थली भवति संसृतिभूमिरेषा, यद्वैरिणोः सुकृतदुष्कृतयोजिनेन्द्र!
 त्वां संश्रितास्तदनयोरिह वर्धमानं, यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः॥१९॥
 हे वीर! नागदमनीव तवाभिधानं,
 संसारतीव्रगरलं भविनो निहन्ति।
 सञ्जप्यमानमहिदष्ट अनस्य मन्त्रं,
 किं नाम नो विषकिकारमपाकरोति॥२०॥
 मिथ्यात्ववासितजनैर्भगवंस्त्वमेव,
 संगृह्यसे विविधरूपविपर्ययेण।
 सम्यक्त्ववासितसुदृष्टिजनैर्भवांस्तु,
 नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण॥२१॥
 शल्यत्रयान्वित-चरित्रयुताश्च जीवाः जायन्त एव दृढबन्धनकर्मबद्धा।
 तद्रिक्तसंयमजुषां च विधेर्जनानां, गच्छन्ति नूनमथ एव हि बन्धनानि॥२२॥
 ये भव्यभावसहिता अपि नाथ! जीवा-
 यावन्न यान्ति खलु संवरनिर्जरायाः।
 मार्गं न ते सुमनसोऽपि च तावतैव,
 भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम्॥२३॥
 धूमध्वजस्य शिखया च यथोर्ध्वगत्या, सम्भूयते पवनवर्जितया तथैव।
 कर्मप्रवातकृत कम्पनताविमुक्तास्ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः॥२४॥
 हर्यासने विविधकान्तिमति स्थितं त्वां,
 भव्याः समीक्ष्य समवश्रितिसंस्थितास्ते।
 धर्मोपदेशसमये ननु कल्पयन्ति,
 चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम्॥२४॥

त्रिंशत्सुवत्सरमितं समयं ह्यनैषी-
हे त्रैशलेय! निवसन् खलु सद्यनि त्वम्।
तोयेऽब्जतुल्यमिव नाथ! विरक्ति वृद्धया,
जातो युवापि सहसा परिमुच्य राज्यम्॥२६॥

मौनी मुनिर्वपुषि मोहनिवारिणीं तां, दीक्षां महाव्रतमयीं स्वयमेव लब्ध्वा।
सत्यां च सत्यमिदमेव हि काललब्धौ, नीरागतां भजति को न सचेतनोऽपि॥२७॥

मोहारिणा विजितजीवगणेन सोऽयं,
वीरो निभालयत नैव जितस्तपस्वी।
शौर्यं च खे प्रबलमित्यमसौ व्यनक्ति,
मन्ये नन्दनभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते॥२८॥

रत्नत्रयमधिगुणैः परिवर्धमानं,
श्रीवर्धमानमिह वीक्ष्य भवन्तमीशम्।
छत्रत्रयस्य विशदस्य वृषः किमेषो-
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥२९॥

देवाधिदेव! समवश्रिति भूमिमिद्धा,
संव्याप्य दिक्षु परितः खलु संस्थितेन।

दृग्बोधवृत्तदमदानदयात्मकेन,
शालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥३०॥

भव्यालयो विततभक्तिभारावनम्रा-नाथ! त्वदीयचरणाम्बुजकोशदेशम्।
मुक्त्वायमत्र महिमानमपीक्षमाणास्त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव॥३१॥

सद्धर्मदेशनपटो! विहरन्नपि त्वं,
तीर्थङ्करप्रकृतिकर्मविपाकयुक्तः।

उद्बोधयन्नपि जनान् शिवमार्गतत्त्वं,
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥३२॥

ते भारती भगवती कथमस्ति शुद्धा-
यत्सा विपक्षमपि कामयते सतीव।

स्याद्वादलाञ्छनयुतं कथमद्वितीयं,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतुः॥३३॥

सर्पाकृतिं किल विधाय कृतोपसर्गो-

देवोऽभवन्निहतवीर्यपराक्रमः सः।
 तैस्ते न कश्चिदपि मानसविप्लवोऽभूत्-
 ग्रस्त्वस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा॥३४॥
 क्रीडारतेन भवता द्विरदः प्रमत्तः,
 सन्त्रासयन् जनमनांसि कृतोऽप्रमत्तः।
 प्रापुस्तथा च विहिताः खलु दन्तघाता-
 स्तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम्॥३५॥
 नाथ! त्वदीयमतमस्तसमस्तदोषं, हृद्यानवद्यकमलङ्किततत्त्व सत्त्वम्।
 दोषस्तथापि खलु येन समीक्षितोऽत्र, सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः॥३६॥
 संसारसिन्धुतरणे तरणीयमानं,
 त्रैलोक्यशेखरमणे! बहुपुण्ययोगात्।
 लब्ध्वा प्रसेव्य ननु सिद्धपदं लभन्ते,
 पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः॥३७॥
 हे ज्ञातृवंशवनचन्दन! ते प्रणीतं,
 धर्मामृतं भुवि निपीय भवन्ति भव्याः।
 तृप्ता वदामि नितरां धृतकल्मषानां,
 किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति॥३८॥
 लोकैषणा मनसि नाथ! विधाय वारं-
 वारं कृतं ह्योपरि भावतो नित्यम्।
 त्वद्दर्शनादिकमतो न हता अनर्थाः,
 प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते॥३९॥
 (द्वितीय चरण अशुद्ध है)
 नाथ! त्वदीयकमनीयकथापि शास्त्रे,
 बद्धा श्रुता बहुविधापि कृता सपर्या।
 द्रव्यैर्विभो! तव कृतोऽपि च गोत्रजापः,
 जातस्तदपि खलु मे न भयप्रमोक्षः॥४०॥
 सम्यग्वदामि शृणु नाथ! न तावकीनो
 ह्यसेवितः खलु जरामृतिजन्महारी।
 धर्मो मया प्रतिभवं बत दुर्दशानां,

जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्॥४१॥
 चित्तं पुनाति मुनिनाथ! गुणस्मृतिस्ते,
 वा संस्तवश्च कथनं परिशुद्धमेतत्।
 एभिः कृतैरपि परं न पदार्थसिद्धिः,
 यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥४२॥
 याचे न किञ्चिदपरं न कदाचनापि,
 यत्त्वं ददासि न हि नाथ! यतोऽसिरिक्तः।
 वाञ्छामि केवलमिदं मम भावनायां,
 दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि॥४३॥
 संसारसागरविलङ्घनसेतुरूपं,
 त्वां प्राप्य मानुषभवे न कृतं मया यत्।
 कल्याणमकल्पमपि तेन बभूव दुःखी,
 वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवनपावन हा हतोऽस्मि॥४४॥
 सम्पूर्णकल्मषविवर्जित! देवदेव!
 लोकातिशायिपरमोत्तमवीर्ययुक्त!
 कारुण्यवारिवरुणालय! मां सुरक्ष,
 सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः॥४५॥
 लब्धो मया ननु विभो! बहुपुण्ययोगात्,
 संसारतारक! भवानिदमेव काङ्क्षे।
 यावन्न निर्वृतिपदं च लभेय मे स्याः
 स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि॥४६॥
 ननू भवन्ति महनीयजनैः प्रपूज्याः,
 सेव्या भवन्ति दिविजैरपि भक्तियुक्तैः।
 नित्यादरा जगति तेऽथ भवन्ति धन्या-
 ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्यः॥४७॥
 (छन्द = आर्या)
 इत्थं वीरस्तवनं भक्त्यापूरितमनोभिसंयुक्ताः।
 कुर्वन्ति योगशुद्ध्या ह्यचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते॥४७॥
 ॥ इति वीरस्तोत्रम् ॥

प्रशस्ति

(छन्द = अनुष्टुप्)

विज्ञानं विमलं यरय, भासते विश्वगोचरम्।
 नमस्तरमै श्री वीराय, पञ्चसंसारभेदिने॥
 वन्देऽहं शारदा माता, जगद्ध्वान्तविनाशिनीम्।
 भासिनीं विश्वतत्त्वानां, भानुभामिव निर्मलाम्॥
 वन्दित्वा च गणाधीशं, गौतमं श्रुतपारगम्।
 कुन्दकुन्दादि सूरीणां, वन्दे भक्त्या पुनः पुनः॥

(छन्द = उपजाति)

चारित्रचक्री सूरिरादिसिन्धु-
 स्तत्पट्टशिष्यो महावीरकीर्तिः।
 तत्पट्टवारान्निधिपूर्णचन्द्रः,
 श्री सन्मतिं हि प्रणमामि नित्यम्॥

(छन्द = अनुष्टुप्)

सन्मतेः पट्टशिष्योऽहं, सुविधिसिन्धुसञ्ज्ञकः।
 अनुवादमकुर्वेऽहं, विशदा देशभाषया॥
 यावच्छशिरवी भौमे, यावत् सलिलराशयः।
 तावदयं सत्छारत्रोऽपि, तिष्ठतु क्षितिमण्डले॥



परिचय

लेखिका

पूज्या गणिनी-आर्यिकाश्री सुविधिमती माताजी

भारत देश की इस पावन वसुन्धरा पर श्रमण-संस्कृति की अजस्र धारा को प्रवाहित कर अनन्त भव्यात्माओं का विकास करने वाले अनेक दिगम्बर तपस्वी सन्त हुये हैं। उस सन्त-परम्परा में रवि के समान तेजस्वी और शशि के समान कान्तिशाली सन्तप्रवर हैं, मेरे आराध्य गुरुदेव परम पूज्य आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज।

ये महान सन्त हैं। सरलता, गुरुभक्ति, आगमनिष्ठता, गुणानुराग, तार्किकता, निस्पृहता, श्रद्धा की अखण्डता, जिज्ञासा की प्रखरता, निर्भयता, निष्पक्षता, वात्सल्यता, लघुता, विनयता आदि अनेकानेक गुणरत्नों से युक्त सागर का नाम ही सुविधिसागर है।

ऐसे अचिन्त्य-प्रज्ञाशक्ति के धारक, गुरुदेव का परिचय लिख पाना सहज नहीं है।

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद नामक शहर में धर्मरत्न श्री इन्दरचन्द्र जी पापड़ीवाल (वर्तमान में सङ्ग्रहस्थ मुनिश्री सुनम्रसागर जी महाराज) का घर-आँगन सब खिल उठा। सौभाग्यवती माता कंचनदेवी (वर्तमान में सङ्ग्रहस्थ क्षुल्लिकाश्री सुध्येयमती माताजी) का प्रथम मातृत्व धन्य हो गया कि उनकी कोख से १९-३-१९७१ को ऐसे बालक ने जन्म लिया, जो विश्व के कल्याण को साधने वाला महान साधक बन गया।

नवजात बालक का नाम क्या रखा जाये? परिवार में इस विषय पर बहुत ऊहापोह हुये। सभी ने मिल कर पहले यशवन्तकुमार यह नाम रखा। दादी माँ (समाधिस्थ आर्यिकाश्री सुवर्णमती माताजी) इस नाम

से सहमत नहीं हुई। उन्होंने बालक को **मनोजकुमार** कहना प्रारम्भ किया। परिवार के कुछ सदस्यों को यह नाम अच्छा नहीं लगा। अतः उन्होंने बालक को **जयकुमार** यह संज्ञा दी। माता का प्यार बालक को **जयेश** कह कर पुकारने लगा। भाई, बहन और मित्रों के मध्य में यह नाम भी लम्बा था। अतः उन्होंने तो हमेशा **जय** कह कर ही पुकारा। इस प्रकार उस बालक ने बचपन में ही अनेक सार्थक नामों को सुशोभित किया।

जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित किया करता है, उसी प्रकार जयकुमार भी स्वयं अपने जीवन को आदर्शमयी बना कर दूसरों को आदर्श की शिक्षा देने लगा।

कहो मत, करके दिखाओ—यह नीति जयकुमार के जीवन का आदर्श थी। वे सदैव अपनी आदर्श नीति के परिपालक और उपदेशक रहे।

सङ्घर्ष उत्कर्ष का बीज है—यह उक्ति चरित्रनायक के जीवन पर सार्थक होती दिखाई देती है। जयकुमार को बचपन से ही नासूर नामक अक्षिरोग था। देढ़ वर्ष की आयुपर्यन्त ही उनकी तीन बार शल्यचिकित्सा हो चुकी थी। पहली शल्यचिकित्सा के समय तो जयकुमार मात्र तीन दिन के थे। पन्द्रह वर्ष की आयु पर्यन्त छह बार नेत्रों की शल्यचिकित्सा हो चुकी थी।

एक बार चिकित्सकों ने माता कंचनबाई को सलाह दी कि बालक बहुत कमजोर और नेत्रशक्ति से हीन है। अतः इसे रोज एक/दो अण्डे खिलाये जाये। इससे इसका जीवन बच जायेगा। अन्यथा, यह बालक अकालमरण को प्राप्त कर सकता है।

माँ ने ओजपूर्ण शब्दों में कहा कि मुर्गी के होने वाले बच्चे को मार कर मैं अपने बच्चे को जीवित रखना नहीं चाहती। मेरे बेटे के भाग्य में अल्पायु और मेरे भाग्य में पुत्रसुख का अभाव ही लिखा हो तो विधि के इस लेख को कौन मिटा सकता है? यदि मेरा बेटा मर जाता है तो मैं दो/चार दिन रो लूँगी, किन्तु मुर्गी के बेटे को मार कर मैं जीवनभर की प्रसन्नता प्राप्त नहीं करना चाहती।

पाँच वर्ष तक भी जयकुमार ठीक से बैठ नहीं पाया। तब चिन्तित माता-पिता ने चिकित्सकों की शरण ग्रहण की। चिकित्सकों ने बताया कि बालक की रीढ़ की हड्डी कमजोर होने से बालक बैठ नहीं पा रहा है। जीवन भर सम्भवतः यह ठीक से नहीं बैठ पायेगा। आज भी आचार्यश्री की आँखें और कमर-ये दोनों अंग कमजोर हैं, किन्तु उनके आत्मबल की कितनी प्रशंसा की जाये कि वे सोलह-सोलह घण्टों तक अध्ययन करते हुये पाये जाते हैं। उनकी सहिष्णुता जगत् को यह शिक्षा प्रदान करती है कि लगन सच्ची हो तो प्रतिकूलतायें भी अनुकूलताओं में परिवर्तित हो जाया करती हैं तथा किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिये शारीरिक बल और बाह्य व्यवस्थाओं से अधिक आत्मबल आवश्यक होता है। मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, अपितु स्वामी है।

बाल्यकाल से ही जयकुमार की बुद्धि अतिशय तीक्ष्ण थी। पाठ्यविषय कितना ही कठिन क्यों न हो, उनके बुद्धिवैभव के कारण वह सरल हो जाया करता था। एक बार याद किया हुआ प्रकरण उन्हें सदा के लिये याद रह जाता है। परम पूज्य युगनायक, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज उनके मस्तिष्क को कम्प्यूटर की उपमा दिया करते थे। वाक्चातुर्य तो उन्हें मिला हुआ सृष्टि का अनोखा उपहार ही था।

मूर्ति लहान पण कीर्ति महान यह उक्ति उन पर अक्षरशः घटित हुआ करती थी। विद्याध्ययन की लगन तथा प्रत्युत्पन्नमति के कारण वे अपने इष्ट-मित्रों में सर्वप्रिय थे।

आपका स्पष्टवक्तव्य आपके व्यक्तित्व का महानतम अलंकरण है। यह गुण आपमें जन्मजात है। एक बार विद्यालय में नियम बना कि प्रत्येक विद्यार्थी टाई लगा कर तथा जूते पहन कर विद्यालय में आयेगा। जयकुमार ने दोनों ही नियमों का पालन नहीं किया। शिक्षक महोदय ने फटकार लगाते हुये कहा कि यदि विद्यालय में रहना हो तो टाई लगा कर और जूते पहन कर ही आना होगा।

जयकुमार ने कहा-गुरुजी! मैं विद्यालय को सरस्वती का मन्दिर मानता हूँ। मन्दिरों में जूते पहन कर जाने जैसा असभ्य मैं नहीं हूँ। रही

बात टाई की, मैं जैन हूँ। ईसाइयों का प्रतीक चिह्न अथवा फैशन का प्रतीक चिह्न पहन कर मैं अध्ययन नहीं करूँगा। विद्यार्थी का प्रमुख लक्षण विनय है, वस्त्राभूषण नहीं। अतः मैं केवल विनय को धारण करके विद्यालय में आ सकता हूँ। अन्ततः आपको इस कार्य को बाध्य नहीं किया गया।

आप जब नौवीं कक्षा में अध्ययन कर रहे थे, तब विद्यालय में पन्द्रह अग्रस्त के निमित्त से तैयारियाँ चल रही थी। राष्ट्रगीत पुनः पुनः बुलवाया जा रहा था। जयकुमार अपनी कक्षा में जाकर बैठ गये। शिक्षक ने इस दृश्य को देख कर उन्हें राष्ट्रगीत को पुनरावर्तन करने का आदेश दिया। जयकुमार ने स्पष्टतः नकार दिया।

बात इतनी बढ़ी कि यह प्रसंग प्रधानाध्यापिका तक जा पहुँचा। उन्होंने पूछा—जयकुमार! तुम इस तैयारी में सम्मिलित क्यों नहीं हो रहे हो? जयकुमार ने उत्तर दिया कि जिस बालक को राष्ट्रगीत नहीं आता हो, उसे नौवीं कक्षा में बैठने का अधिकार है क्या? यदि राष्ट्रगीत व्यवस्थित आता हो तो फिर उसे स्वतन्त्रतादिवस के अवसर पर तैयारी करने की आवश्यकता ही क्या है?

उनके इस तर्क का उत्तर किसी भी शिक्षक अथवा शिक्षिका के पास नहीं था। अन्ततः विद्यालय की प्रधानाध्यापिका ने निर्णय दिया कि तुम इस तैयारी में सम्मिलित नहीं होना चाहो तो मत हो, किन्तु तुमसे एक प्रार्थना है कि यह तर्क अन्य छात्रों के मध्य मत देना, क्योंकि हमें तो औपचारिकता का निर्वहन करना ही पड़ेगा।

साधुओं की वैयावृत्ति करना तथा दीन-अनार्थों की सेवा करना उनका स्वाभाविक गुण था। धार्मिक संस्कार तो जैसे उनमें पूर्वभव के ही अनुगामी थे। निरन्तर गृहत्याग करने के लिये आपका मन छटपटाया करता था।

छठीं, सातवीं तथा आठवीं कक्षा की पढ़ाई के लिये आपको बाहुबली (कुम्भोज) के बाल-ब्रह्मचर्याश्रम में रखा गया। उस समय श्रीक्षेत्र पर परम पूज्य मुनिप्रवरश्री समन्तभद्र जी महाराज विराजमान थे। वे आगम

के तलस्पर्शी विघ्न तथा ज्येष्ठ सन्त थे। उनकी वन्दना करने के लिये अथवा उनसे शिक्षा पाने के लिये भी साधुओं का आगमन इस क्षेत्र पर हुआ करता था। अतः माता-पिता से दूर रहने का आपको कभी दुःख नहीं हुआ। आप तो गुरु-चरणों में रह कर अत्यानन्द में थे।

मुनिप्रवरश्री का रनेह आपको पुनः पुनः उनके चरणों में ले जाया करता था। आप भी गुरुदेव की सेवा कर पुण्यार्जन कर रहे थे। विद्यालय से अवकाश पाने के उपरान्त आप अपना समय गुरुचरणों में ही व्यतीत किया करते थे। गुरुसंगति आपकी पात्रता के विकास में कारण बनी। वही पात्रता का विकास आपकी संयमयात्रा का कारण बना।

एक दिन विद्यालय में जयकुमार का ओजपूर्ण भाषण हुआ। उस कार्यक्रम में मुनिप्रवरश्री समन्तभद्र जी महाराज का मंगल सानिध्य प्राप्त था। मुनिप्रवरश्री जयकुमार के भाषण को सुन कर बहुत प्रभावित हुये। उन्हें बालक में धर्म का भावी कर्णधार दिखाई देने लगा। सायंकाल के समय जब जयकुमार गुरुवन्दना के लिये पहुँचे तो गुरुदेव ने कहा- आप होनहार बालक हैं। आप यदि अपने आपको धर्म को सौंप देते हो तो आपका तो भला होगा ही, साथ में अनेक भव्य जीवों का भी भला होगा। गुरुमुख से इतनी बड़ी बात सुन कर जयकुमार अभिभूत हो उठे।

एक बार मन से मन के तार मिलने के बाद कौन बुद्धिमान विलम्ब करेगा? जिसे गुरुकृपा मिल जाती है, उसे तो मोक्षमार्ग ही क्या? साक्षात् मोक्ष ही मिल जाता है। जयकुमार शीघ्र ही श्रीफल लेकर आया और गुरुचरणों में समर्पित कर बोला-हे गुरुदेव! मुझ पर अनुग्रह करते हुये आप मुझे आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत प्रदान कीजिये।

गुरुदेव ने कहा-बेटा! अभी तुम बहुत छोटे हो। जयकुमार ने कहा- गुरुदेव! आप जैसे महान अनुभवी के श्रीचरणों का आश्रय पाकर मैं अपने आप ही बड़ा बन जाऊँगा। गुरुदेव को व्रत देने में कुछ संकोच-सा हो रहा था।

अतः उन्होंने टालने की दृष्टि से कहा कि तुम्हारे माता-पिता यहाँ नहीं हैं। तुम उन्हें आने दो। उनके आने पर व्रत-विषयक चर्चा करेंगे,

किन्तु जयकुमार कहाँ मानने वाला था। उसका मन तो व्रतों को ग्रहण करने के लिये छटपटा रहा था।

उसने हाथ जोड़ कर कहा-गुरुदेव ! मेरी तो माता भी आप हैं और पिता भी। आपके अतिरिक्त मेरा इस दुनियाँ में कोई नहीं है। अतः मेरा उद्धार करने में विलम्ब मत कीजिये और मुझे यह महानतम व्रत प्रदान कर मुझ पर आपका आशीर्वाद बनाये रखिये। ऐसे अनूठे शिष्य को प्राप्त करके कौन सद्गुरु आनन्दित नहीं होगा ? फिर भी, मुनिप्रवरश्री अचानक इतने बड़े व्रत को देने तैयार नहीं हुये। उन्होंने समझाया कि अभी आप केवल आयु के पच्चीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य से रहने का नियम कीजिये। उचित समय आने पर आगे की चर्चा करेंगे। जयकुमार का मन नहीं मान रहा था, किन्तु गुरु आज्ञा अनुलंघ्यनीय होती है। यही सोच कर उसने आयु के पच्चीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी रहने का नियम कर लिया। उसी दिन उसने कन्दमूलत्याग, रात्रिभोजनत्याग, शूद्रजलत्याग आदि अनेक प्रकार के नियम ले लिये।

उसी दिन जयकुमार ने आजीवन जूते-चप्पल आदि का त्याग कर दिया। उस समय जयकुमार की आयु मात्र दस वर्ष की थी। गृहीत नियमों का परिपालन करते समय उनमें कभी प्रमाद नहीं आया।

आपने दसवीं की परीक्षा दी। परीक्षा के दूसरे ही दिन आपने गुरुचरणों में पहुँचने का मानस बनाया। आपने माता-पिता से अनुमति चाही। २८-४-१९८६ को आपने प्रातः पाँच बजे घर छोड़ा और परम पूज्य आचार्यश्री हेमसागर जी महाराज के चरणों का वरण किया। उस समय आपकी आयु पन्द्रह वर्ष एक माह और नौ दिनों की थी। अल्पायु में इस प्रकार का अद्भुत साहस प्रशंसनीय है।

जयकुमार ने अक्षयतृतीया (ईसवी सन् १९८६) के पावन अवसर पर नेरी में (जलगाँव) आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया। गुरुदेव ने उनका नाम ब्रह्मचारी जैनेन्द्रकुमार रखा। उस दिन से आपने धोती-दुपट्टा इन दो वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों का भी त्याग कर दिया। आजीवन के लिये संकल्पपूर्वक घर का परित्याग कर दिया।

आषाढ शुक्ला अष्टमी के दिन आपने अतिशय क्षेत्र कचनेर (औरंगाबाद) में सातवीं प्रतिमा का व्रत भी ग्रहण कर लिया।

अस्वस्थ अवस्था में सायंकाल में जल की छूट रख कर आपने शेष काल में एकाशन का नियम भी लिया।

दिनांक १०-३-१९८७ को आपने गुरुदेव से निवेदन किया कि आपका दीक्षादिवस दिनांक १३-३-१९८७ को आ रहा है। उसी दिन आप मुझे जिनदीक्षा दीजिये।

गुरुदेव ने कहा कि मैं क्षुल्लक दीक्षा दे सकता हूँ। शिऊर नगर में दिनांक १३ मार्च १९८७ को जैनेन्द्रकुमार क्षुल्लकश्री रवीन्द्रसागर जी महाराज बन गये।

क्षुल्लक अवस्था में आपका वर्षायोग न्यायडोंगरी (नाशिक) में हुआ था। आपकी चारित्रनिष्ठा से प्रभावित होकर गुरुदेव ने २१-१०-१९८७ को आपको ऐलक दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के उपरान्त आपका नाम ऐलकश्री **रूपेन्द्रसागर** जी महाराज रखा गया।

आप गुरुचरणों से निकल कर अपने दादागुरु परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के श्रीचरणों में पहुँचे। सङ्ग के साधुओं की वैयावृत्ति करना, ध्यान-अध्ययन में रत रहने का प्रयत्न करना आदि वृत्ति के कारण ऐलक जी ने सङ्ग का मन मोह लिया।

वैशाख शुक्ला सप्तमी (११ मई १९८९) के पावन अवसर पर प्रातःकालीन शुभ बेला में ऐलक जी की मुनिदीक्षा सम्पन्न हुई।

नवदीक्षित मुनि को गुरुदेव ने **सुविधिसागर** नाम प्रदान किया। गुरुदेव के द्वारा रखा गया यह नाम कितना अन्वर्थक है? इसे सभी जानते हैं।

दीक्षा के उपरान्त आपकी ज्ञानपिपासा अत्यधिक तीव्र हो गई। सागवाड़ा में हुये पहले वर्षायोग में ही आपने गुरु के आदेश से ज्योतिष में कुण्डली का अध्ययन किया तथा स्वर-ज्योतिष पढ़ा।

उस वर्षायोग में गुरुदेव ने आपको आयुर्वेदशास्त्र और मन्त्रशास्त्र के अनेक रहस्यों से परिचित कराया।

गुरुचरणों में बैठ कर अभीक्षणज्ञानोपयोगी बन कर आप चारों अनुयोगों का अध्ययन करते थे।

वर्षायोग के उपरान्त आपने गुरु के सानिध्य को छोड़ कर ज्ञान की प्राप्ति के साधन जुटाने प्रारम्भ किये। इसके फल से आप शीघ्र ही संस्कृत और प्राकृत भाषा के अध्येता बन गये।

आपने अपने बल पर आगम, अध्यात्म, न्याय और आचारशास्त्रों का अध्ययन किया।

विचारों की परिशुद्धि के लिये आप पुराणशास्त्रों का स्वाध्याय करते थे। आप चारों ही अनुयोगों में पारंगत हैं।

आपने लौकिक विषयों का भी भली-भाँति अध्ययन किया है। छन्द, ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्र, योगचिकित्सा, चुम्बकचिकित्सा, एक्युपेशरचिकित्सा, एक्युपञ्चरचिकित्सा, मालिशचिकित्सा, रेकी आदि का भी आपने विधिवत् अध्ययन किया है।

अजैन ग्रन्थों का अध्ययन भी आपने अत्यन्त लगन से किया है। चारों वेद, अठारह पुराण, कुछ उपपुराण, एक सौ आठ उपनिषद्, बीस स्मृतियों का अध्ययन कर आपने वैदिक ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त किया। गीता की सात संस्कृत टीकाओं का अध्ययन आपने किया है।

कुराण शरीफ और कुराण हदीस भी आपने पढ़ा। अन्य धर्मों के प्रमुख ग्रन्थ भी आपने पढ़े।

इस प्रकार अध्ययन के क्षेत्र में आपने बहुत उन्नति की।

आप तुलनात्मक अध्ययन के पक्षधर हैं। किसी मत की आलोचना करने की अपेक्षा आप उसे समझने में अधिक रुचि रखते हैं। आपका मानना है कि जैनाचार्यों ने अपने अनुभव के बल पर जिनेन्द्रवाणी का जो लिपिकरण किया है, वह पूर्णरूप से यथार्थ है। समयानुसार प्रतिपादन करने की शैली में परिवर्तन हो जाये तो जैनधर्म विश्वधर्म बन कर वैश्विक समस्याओं का निराकरण करने में सहयोगी बन सकता है।

जिनवाणी की सेवा करने वाले साधुओं में आपका नाम शीर्षस्थ है। श्रावकों को आप स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते हैं। समाज को प्रकाशक

के द्वारा निर्धारित किये गये मूल्य से आधे मूल्य में ग्रन्थ उपलब्ध हो-
ऐसे प्रयत्न आपने अनेक स्थानों पर किये।

अमीर-गरीब, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध आदि भेद आपके चरणों में नहीं पाया जाता। यही कारण है कि जो एक बार आपके चरणों में जुड़ जाता है, वह आपका होकर रहता है। जिनवाणी की सेवा आपका मूल ध्येय है। यह सब सच होते हुये भी आप अपने आवश्यक कर्तव्यों के परिपालन में भी उतने ही नियमबद्ध हैं। आपका आहार शुद्ध और सात्विक है। यही कारण है कि आपको औषधियों के सेवन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शिष्यों को भी आप यही समझाते हैं कि भ्रमरवृत्ति से आहार करो तो कभी कष्ट नहीं होगा। भोजनसंयम को आप सकलसंयम का मूलस्तम्भ मानते हैं।

गुरुदेव ने आपकी पात्रता को विलोक कर १९९५ में ही आपके **आचार्यपद** की घोषणा कर दी। गुरुदेव का आदेश **रत्नत्रयनिधिद्वार** नामक ग्रन्थ में प्रकाशित भी हो गया, किन्तु आपने उस पद का कभी प्रयोग नहीं किया। दिनांक २०-६-२००४ का वह शुभ दिन भी आया। नरवाली (राजस्थान) में परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज ने अपने सुयोग्य शिष्य पर आचार्यपद के संस्कार किये। यह महानतम आश्चर्य था कि उस समय आचार्यश्री एक पाटे पर विराजमान थे और आचार्यपद को ग्रहण करने वाला शिष्य सिंहासन पर आरूढ़ था। मन्त्र-संस्कार के मध्य में जब पैरों में चन्दन के द्वारा तिलक निकालने का अवसर आया, तब गुरुदेव ने स्वयं ही अपने शिष्य के पैरों पर तिलक लगाया। स्वयं ने छत्तीस मूलगुणों के संस्कार किये। प्रतिष्ठाचार्यश्री महावीर जी जैन (गिंगला वाले), स्थानीय प्रतिष्ठाचार्यश्री कारुलाल जी जैन तथा सङ्घसंचालिका मैनाबाई ने सिंहासनशुद्धि, पादपूजन आदि सम्पूर्ण संस्कार किये।

प्रवचन में आचार्यश्री ने एक महत्त्वपूर्ण रहस्य को उद्घाटित किया कि **हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस सङ्घ के संचालक पद पर नियुक्त करते हैं।** अर्थात् गुरुदेव ने उस दिन केवल आचार्यपद ही नहीं

दिया था, अपितु उत्तराधिकारीत्व भी उद्घोषित किया था। आचार्यश्री का वह प्रवचन आचार्यश्री के आशीर्वाद से प्रकाशित होने वाली **अंकलीकर वाणी** (जुलाई २००४) नामक मासिक पत्रिका में यथावत् प्रकाशित हुआ है। उसी का प्रकाशन **अक्षय-ज्योति** के आचार्यपद विशेषांक (अक्तुबर, २००४) में हुआ है। आपने २००४ का वर्षायोग ओबरी (राजस्थान) में किया तथा वर्षायोग के पश्चात् आप पुनः गुरुदेव के पास खमेरा पहुँचे।

आपने गुरुदेव से निवेदन किया कि प्रायश्चित्तग्रन्थ रहस्यग्रन्थ है। इसका अध्ययन गुरुमुख से हो तो अधिक उचित है। अतः आप मुझे इस ग्रन्थ का अध्ययन करा दीजिये। अपने शिष्य के इस निवेदन को सुन कर अपने उत्तराधिकारी को प्रायश्चित्तशास्त्र में पारंगत करने के लिये स्वयं गुरुदेव ने उस शास्त्र का अध्ययन कराया। इस अध्ययन में परम पूज्य आचार्यश्री चन्द्रसागर जी महाराज आपके सहपाठी थे।

ईसवी सन् २००५ में आचार्यश्री का वर्षायोग मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक भूमि मन्दसौर नगरी में हुआ। एक दिन **राजीव गाँधी शासकीय महाविद्यालय** में **कालिदास समारोह** का आयोजन किया गया था। उस कार्यक्रम में आपको भी आमन्त्रित किया गया था।

इस कार्यक्रम का आयोजन महाविद्यालय के अतिरिक्त कालिदास अकादमी-उज्जैन तथा मध्यप्रदेश सांस्कृतिक संरक्षक सङ्घ-भोपाल ने किया था। चर्चा का विषय था-**मालवांचल और कवि कालिदास**। कार्यक्रम के अन्त में आपका मांगलिक प्रवचन हुआ।

आपने कालिदास के दूतकाव्य पर आधारित जैन दूतकाव्य ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया। प्रवचन के उपरान्त तीनों संस्थाओं के संयुक्त तत्त्वावधान में आपको **विद्या-वाचस्पति** यह अलंकरण प्रदान किया गया।

मन्दसौर के वर्षायोग में ही आपने **समग्र जैन ग्रन्थकोश** जैसे संगणक कोश की महानतम रचना की। जैन ग्रन्थों की सुरक्षा के लिये किया गया यह अनुपम उद्यम है। आपके द्वारा **जैन ग्रन्थ संग्रह** नामक संगणक कोश की भी रचना की गई है।

आपके द्वारा बालकों का ज्ञानवर्द्धन करने के लिये जिन संगणक क्रीडालयों का निर्माण किया गया, उनके कारण जिनशासन की अभूतपूर्व प्रभावना हो रही है।

सन् २००९ का वर्षायोग मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) में सम्पन्न हुआ। गुरुदेव के आदेश को प्राप्त कर आपने वर्षायोग के तत्काल बाद वहाँ से विहार किया। विशाल सङ्घ के साथ मात्र ढाई माह में आपने चौदह सौ किलोमीटर का विहार पूर्ण किया। दिनांक १८-१-२०१० को प्रातःकालीन बेला में आप गुरुचरणों में पहुँचे।

दिनांक २४-१२-२०१० को कोल्हापुर में परम पूज्य आगमकोविद, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज का प्रातः कालीन बेला में (ब्रह्ममुहूर्त) में समाधिमरण हुआ। २००४ में गुरु महाराज के द्वारा नरवाली में की गई उद्घोषणा के अनुसार उस दिन से आप उनके पट्टाधीश बन गये।

पट्टाचार्यपद की अनुमोदना परम पूज्य स्याड्दकेसरी, गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज तथा परम्परा के लगभग पच्चीस आचार्यों ने की। यह आपकी सर्वप्रियता का उदाहरण है।

इतने सम्माननीय पद पर अवरिथत रहते हुये भी आप अहंकारादि दुर्गुणों के द्वारा अस्पृशित हैं। दिनांक ११-५-२०१३ को आपका पच्चीसवाँ दीक्षादिवस था। उस दिन श्रीक्षेत्र कुन्थुगिरि में आपके द्वारा लिखित, रचित और अनुवादित पचहत्तर ग्रन्थों का विमोचन परम पूज्य गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज के मांगलिक सानिध्य में सम्पन्न हुआ। यह वैश्विक कीर्तिमान था। इस कीर्तिमान के लिये **अमेज़िंग विश्व रिकॉर्ड** ने आपको पुरस्कृत किया और **लिमका बुक ऑफ रिकॉर्ड्स** में आपका नाम अंकित हुआ। दिनांक ४-५-२०१७ को आपके द्वारा लिखित छब्बीस विधान कृतियों का भी विमोचन हुआ।

आप अनाग्रही व्यक्तित्व के धारक हैं। आपका विहार किसी भी क्षेत्र में हुआ हो, आपने जिनालय की परम्परा का विरोध नहीं किया। आप मानते हैं कि जिस जिनालय में जो परम्परा चल रही है, उसे यथावत् रखना चाहिये, जिससे सामाजिक एकता भंग नहीं होती।

आपका जीवन सहज और सरल है। आपकी चर्या में आगम की मर्यादा स्पष्टरूप से झलकती है। शिष्यों के प्रति आपका अगाध वात्सल्य है। जिनवाणी के प्रति आपकी अपूर्व भक्ति है। गुरु-परम्परा के प्रति आप अत्यन्त एकनिष्ठ हैं। परसङ्गीय साधुओं के प्रति आपका अनुराग विलोकनीय है। प्रत्येक सङ्घ का गुणानुवाद आप मुक्तकण्ठ से किया करते हैं। आपकी स्मरणशक्ति की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी ही कम है।

श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की भाँति आपका तप भी अनुपम है। इसका अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि २०११ से २०१९ के आठ वर्षीय कालखण्ड में आपने सात सौ से अधिक उपवास किये हैं।

आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, हिन्दी इन पाँच भाषाओं में साहित्य की रचना करने में समर्थ हैं। कविताओं का निर्माण, भजनों की रचना करना एवं मुक्तकों की रचना करना आपका छन्द है।

आपका ज्ञान और ध्यान नित्य ही प्रवर्द्धमान रहें, आपके द्वारा की जाने वाली जिनवाणी की सेवा नित्य प्रति प्रगति करती रहें, आपका शिष्यरूपी उपवन निरन्तर हँसता-मुस्कुराता रहें, आपके द्वारा अपूर्व धर्मप्रभावना हों, आपकी अमृतवाणीरूपी गंगा में अवगाहन करके भव्यसमूह शान्ति प्राप्त करें, आपकी कीर्ति जगत्-व्यापिनी बन कर जग के मैल का अपहरण करें, आप दीर्घायु होवें - मैं यही मंगल कामना करती हूँ।

दो हजार वर्षों की आचार्य-परम्परा में अनेक आचार्यों ने अपने सत्प्रयत्न से जिनशासन के ध्वज को उन्नत लहराता रखा है। उस परम्परा में एक वर्तमान में एक आचार्य-परमेष्ठी हैं-परम पूज्य आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज। अपने तप, त्याग, अनुभव, साहित्यसर्जन, आदर्श चारित्र आदि के द्वारा उन्होंने श्रमणसंस्कृति की अपूर्व सेवा की है।

आचार्यश्री ने अरिहन्तसहस्रनाम, सिद्धसहस्रनाम, जिनवाणीसहस्रनाम और गुरुसहस्रनाम नामक चार सहस्रनामों की रचना की। अनेक संस्कृत ग्रन्थों का निर्माण करके आचार्यश्री ने साहित्यश्री की श्रीवृद्धि की है। ऐसे आचार्य-परमेष्ठी को शत-शत नमन।

सुविधि-अष्टकम्

देवागमगुरुभक्त-विशदा कीर्तिधारकः।
 ज्ञानवैराग्यसिद्धयर्थं, वन्दे सुविधिसागरम्॥१॥
 क्षमादि श्रेष्ठधर्माणां, ह्याचाराणां च पालकः।
 शुद्धसम्यक्त्वलाभार्थं, वन्दे सुविधिसागरम्॥२॥
 तपस्या चक्रवर्तीश्च, सन्मार्गस्य प्रदीपकः।
 ज्ञानध्यानतपोपूतो-वन्दे सुविधिसागरम्॥३॥
 षडावश्यककार्याणां, त्रिगुप्तेश्च प्रपालकः।
 कामसुभटजेता त्वं, वन्दे सुविधिसागरम्॥४॥
 सौम्यमूर्तिर्महाध्यानी, भव्यजीवप्रबोधकः।
 हितोद्योगी मृदुभाषी, वन्दे सुविधिसागरम्॥५॥
 दीक्षाशिक्षाप्रदातारं, शिष्यानामनुग्राहकः।
 श्रेयोमार्गे सदारूढं, वन्दे सुविधिसागरम्॥६॥
 हृदये वसते शुद्धिर्वचने च सरस्वती।
 काये चरित्रधर्तारं, वन्दे सुविधिसागरम्॥७॥
 इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं, त्रैविद्यं स्नेहपूर्वकम्।
 लभते स च निर्वाणं, हीदमपि न संशयः॥८॥

रचयित्री

पूज्या बालब्रह्मचारिणी, आर्यिकाश्री

सुस्नेहमती माताजी



उपलब्ध साहित्य

ग्रन्थसाहित्य

अणुपेहा
दंसणसारो
ज्ञानांकुशम्
ज्ञाणाज्झयणपाहुड
करलक्खणं
कषायजयभावना
श्री मल्लिनाथ पुराण
णाणसारो
णयलक्खणं
नवपदार्थनिश्चय
प्रमाणप्रमेयकलिका
प्रश्नोत्तररत्नमालिका
रत्नमाला
सज्जनचित्तवल्लभ
संबोह पञ्चासिया
शासनचतुरिंशिका
सुगन्धदशमी कथा
स्वतन्त्रवचनमृतम्
सिद्धंतसारो
वैराग्यमणिमाला
व्रतफलम्
श्रीपुराण
श्री गौतमस्वामी चरित्र
श्री सुदर्शन चरित्र
द्व्वणिमित्तं
प्रश्नमाला

पाठ्यसाहित्य

भगवान अनन्तवीर्य
आओ, खेलें क्रिकेट
धर्म और संस्कृति
धर्मचक्र
एक के बाद एक
ज्ञाननिधि क्रीडालय
कौन बनेगा जिनवाणीनन्दन?
कैद में फँसी है आत्मा
कालसर्पयोग : एक भ्रम
रहरयों का भण्डार : महामन्त्र णमोकार
पञ्चकल्याणक : स्वरूप एवं विश्लेषण
परम प्रामाणिक अनुयोग : प्रथमानुयोग
साँपसीढ़ी प्रतियोगिता
जैनधर्म में स्तुति : एक अध्ययन
सुविधि चिन्तनपुष्प
सुविधि आसनचिकित्सा
सुविधि चिकित्सासार
सुविधिप्रश्नमणिमाला
स्वाध्यायक्रमदर्पण
सुविधि वचनपराग
स्वास्थ्य ही जीवन
श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला
रम्रणशक्ति का विकास कैसे करें?
तोल मोल के बोल
तीर्थकर-दर्शन

विधानसाहित्य

श्री आदिनाथ विधान
 श्री अजितनाथ विधान
 श्री सम्भवनाथ विधान
 श्री अभिनन्दननाथ विधान
 श्री चन्द्रप्रभ विधान
 श्री वासुपूज्य विधान
 श्री कुन्थुनाथ विधान
 श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
 श्री सम्मेदशिखर विधान
 श्री पञ्चकल्याणक विधान
 श्री कल्याणमन्दिर विधान
 श्री भक्तामर विधान
 श्री तत्त्वार्थसूत्र विधान
 श्री रोटतीज व्रत
 श्री रविव्रत मण्डल
 श्री जिनगुणसम्पत्ति व्रत
 श्री श्रुतरकन्ध विधान
 श्री सुगन्धदशमी व्रत विधान
 श्री निर्दुःखसप्तमी व्रत विधान
 श्री रत्नत्रय व्रत विधान
 श्री तपःशुद्धि विधान
 श्री सहस्रनाम विधान
 श्री दर्शनविशुद्धिभावना विधान
 श्री कल्याणभावना विधान
 श्री बाहुबली विधान

विधानसाहित्य

अष्टाह्निका विधान
 चन्दनषष्ठी विधान
 एकीभाव विधान
 ज्ञानपच्चीसी विधान
 कर्मदहन विधान
 कवलचन्द्रायण विधान
 कुन्थुगिरि विधान
 लघु सिद्धचक्र विधान
 मृत्युंजय विधान
 णमोकारमहामन्त्र विधान
 पञ्चमेरु विधान
 पुष्पांजली विधान
 रत्नत्रय (बृहत्) विधान
 सर्वदोषप्रायश्चित्त विधान
 शान्ति विधान
 शान्तिनाथ विधान
 शान्तिभक्ति विधान
 धवला विधान
 श्रेयांसनाथ विधान
 गणधरवलय विधान
 ज्ञानार्णव विधान
 त्रेपनक्रियाव्रत विधान
 वर्तमान चतुर्विंशतितीर्थकर विधान
 विद्यमान विंशतितीर्थकर विधान
 व्रतभावना विधान
 विषापहार विधान

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के और अनेक विधाओं के साहित्य की रचना
 आपने की है, जो जन-जन को प्रबोधित करने में सक्षम है।